चिंतन कण

उपाध्याय अमर मुनि

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२

चिन्तन-कण

चिन्तन

उपाध्याय अमरमुनि

●

संकलन

उमेश मुनि

श्री सन्मति ज्ञानपीठ

लोहामंडी, आगरा

भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में

चिन्तन
उपाध्याय अमरमुनि

सम्पादन :
उमेश मुनि

प्रकाशक :
सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२

संस्करण
प्रथम, माघ पूर्णिमा फरवरी १९७५

मूल्य : दो रुपये

मुद्रक
[illegible]
[illegible]
[illegible]

☐ पतित पावनी गंगा का प्रवाह अनन्त जल-
ाशि के रूप मे बह रहा है। पिपासाकुल व्यक्ति उसके
मीप पहुंचता है और आवश्यकता भर जल पी कर
पनी प्यास बुझा लेता है। एक तृप्ति की अनुभूति
सको हो जाती है।

यही स्थिति ज्ञान के सम्बन्ध मे भी है। जिज्ञासु
नन्त ज्ञान राशि मे से अपने क्षयोपशम के अनुसार
छ ग्रहण कर अपनी जिज्ञासा को शान्त करता है।
क आत्म-तृप्ति, आत्म-सतोष की अनुभूति से वह
्म उठता है।

प्रस्तुत सकलन के पीछे भी कुछ ऐसी ही भावना ने काम किया है। आज के मानव का जीवन व्यस्तता की अथाह गहराईयो मे डूब चुका है। वर्तमान की परिस्थितियो ने मनुष्य को इतना अत्यधिक व्यस्त बना दिया है कि उसे धार्मिक क्रियाओ के करने या धर्म-ग्रन्थो के पठन-पाठन का ठीक समय ही नही मिल पाता। जिज्ञासु-जन इससे जीवन मे कुछ रिक्तता अनुभव करने लगे हैं।

इसी रिक्तता को भरने मे प्रस्तुत सकलन अधिक उपयोगी होगा, ऐसा हृदय का विश्वास है। राष्ट्रसन्त, उपाध्याय कविरत्न श्री अमरमुनि जी महाराज तो सतत प्रवहमान ज्ञान गगा के अजस्र स्रोत हैं। इस अनन्त ज्ञान राशि मे से कुछ कण ही सकलित कर पाया हूँ। जो आज के व्यस्त जीवन जीवियो के लिए अधिक उपयोगी होगे। जो अध्ययन की दिशा मे अधिक अग्रसर नही हो सकते वे इससे अवश्य ही लाभान्वित हो सकेंगे। छोटे-छोटे रूप मे जीवनोपयोगी कुछ चिन्तन-कण इसमे सकलित किए हैं। जो हमे हमारे प्रतिदिन के कार्य-व्यवहार मे जागरुकता बरतने का इगित करते हैं। □

जैन भवन लोहामंडी, आगरा — उमेश मुनि

शरद् पूर्णिमा

२० अक्टूबर १९७५

चिन्तन के क्षणो मे

राष्ट्रसन्त उपाध्याय अमरमुनि

चिन्तन-कण

□ किसी से भी पूछ लीजिए उसके सम्बन्ध मे कि आप कौन हैं ? तो कोई कहेगा मैं डाक्टर हूँ, कोई अपने आपको वकील वतलायेगा, तो कोई न्यायाधीश, कोई स्वय को इ जीनियर कहेगा, तो कोई व्यापारी। इस प्रकार अपने आपको कोई कुछ वताता है, तो कोई कुछ। मतलब यह है कि प्रत्येक मानव अपने आपको अपने कार्य-व्यवहार के अनुरूप ही दर्शाता है। परन्तु अपने आपको मनुष्य कोई नही वतलाता, जवकि वह मूलत इसी रूप मे है। इसलिए मनुष्य को मनुष्य के रूप मे समझना आज के युग की सवसे बडी आवश्यकता है। खेद है कि आज का मानव सभ्य, सुसस्कृत अथवा पठित होते हुए भी स्वय को बिसराए हुए है, भूले हुए है। वह अपना परिचय केवल ऊपर-ऊपर का ही दे पाता है। जबकि आवश्यकता है अपने आपको सही रूप मे जानने-पहिचानने एव प्रस्तुत करने की। मनुष्य अन्य कुछ वाद मे है सर्वप्रथम वह मनुष्य है। मानवता ही उसका सबसे वडा एव सुन्दर परिचय है। □

□ जीवन मे कुछ घडियाँ ऐसी भी आती हैं जो हमारे जीवन की दिशा–निर्धारण करने मे निर्णायक होती हैं। सम्पूर्ण जीवन के लिए जो रोशन मीनार का काम दे जाती है। जीवन को प्रकाश एव प्रसन्नताओ से भर देती हैं। खुशियो के फूलो से दामन भर देती हैं। सन्त पुरुषो के श्री चरणो मे व्यतीत की गई चन्द घडियाँ ही हमारे जीवन को प्रकाशित रखने के लिए पर्याप्त हैं। ये ही घडियाँ हमारे जीवन की दिशा–निर्धारित करने मे सहायक तथा निर्णायक होती हैं। ये ही वह क्षण हैं जव हमारा जीवन दिशा-वोध प्राप्त करता है। सही अर्थों मे एक वार दिशा-वोध की सम्यग् सम्प्राप्ति हो जाने पर फिर जीवन मे भटकाव नही रह पाता। भटकन समाप्त हुई कि जीवन उत्कर्ष की ओर वढ चलता है। फिर अभ्युदय तथा नि श्रेयस के द्वार उद्घाटित होने मे विलम्व नही लगता। इसलिए जीवन की निर्णायक घडियो को पहिचानना सीखिए। □

☐ श्रम प्रगति का द्वार है। पूर्णता के शिखर पर श्रम के सोपान द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। आज के श्रम का फल, कल का आराम और आनन्द है। श्रम नए-नए प्रतिफलो के द्वार उद्घाटित कर देता है। विश्व की ऐसी कोई उपलब्धि नही, जो श्रम के द्वारा सम्प्राप्त न की जा सकती हो। भौतिक अथवा अध्यात्मिक, दोनो ही क्षेत्रो मे इसकी प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है। यह हमारे दोनो ही जीवन-मीनारो की नीव है। परम लक्ष्य-प्राप्ति का प्रथम एव सशक्त चरण है।

समाज का आधार यह श्रम ही तो है। जिस राष्ट्र के नागरिक श्रमजीवी होंगे वह राष्ट्र समृद्ध होगा तथा उसको कोई भी परास्त नही कर सकेगा। श्रम व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र के स्थैर्य का प्रतीक है, उन्नति का द्योतक है। इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे श्रम की प्रतिष्ठा आवश्यक ही नही, अपितु अनिवार्य है। श्रम के उपासक बनिए। श्रम को जीवन का अभिन्न अग अनिवार्य रूप से बनाइए। फिर सिद्धि एव सफलता आपके अपने पास है। ☐

□ जिस प्रकार यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व यात्री अपने गन्तव्य स्थान का निश्चय करके ही किसी वाहन मे वैठता है। ऐसे ही हमारे लिए भी अपनी कर्म-यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व अपने-अपने गन्तव्य स्थान का निश्चय कर लेना आवश्यक है। क्योकि लक्ष्यहीन जीवन स्वच्छन्द रूप से सागर मे छोडी गई नाव के समान होता है। ऐसी नौका या तो भवर मे डूब जाएगी, या किसी चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाएगी। लक्ष्यहीन जीवन भी इसी भाति कभी सफल नही हो सकता। लक्ष्य निश्चित करते समय इस वात का ध्यान रखिए कि केवल कल्पनाओ के स्वर्णिम सपनो मे ही लक्ष्य का निर्धारण न हो। अपनी योग्यता और क्षमता को ध्यान मे रखकर ही कोई कदम उठाएँ। □

☐ जीवन है, तो द्वद्व भी हैं। सासारिक अवस्था मे रहते हुए मानव द्वन्द्वो से अतीत नही हो सकता। हाँ, उन्हें झेलने एव सहन कर जाने की क्षमता को जागृत करने के लिए मानव को सहज सयम तथा तपस्त्याग की कठिन-कठोर भूमि से होकर गुजरना होगा। जब तक ऐसा नही होगा तब तक द्वन्द्व मानव-मन पर हावी रहेंगे ही। जहाँ द्वन्द्व हैं वही वैषम्य का सघर्ष है। जहाँ सघर्ष है वहाँ शान्ति की कामना आकाश कुसुमवत् ही समझिए। द्वद्व सदा हर प्रकार की अशान्ति को जन्म देता है। अशान्ति व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व को फिर चैन से बैठने नही देती। उसकी समस्त शक्ति गलत दिशा की ओर बढ चलती है। एक बार गलत दिशा पकड लेने पर व्यक्ति अपने लक्ष्य बिन्दु से दूर हटता चला जाता है, फिर वह पतन की राह पकड लेता है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति भी कुछ ऐसी ही बनी हुई है। आज समस्त विश्व मानवता मूलक मूल्यो को बिसरा रहा है। परिणामत युद्ध के विस्फोटक बादल उमड-घुमड उठते है यदा-कदा। इस विस्फोटक वातावरण को समाप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को तपस्त्याग एव आत्म नियत्रण रूप सयम के चौखटे मे स्वय को फिट करना होगा। ☐

☐ यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि व्यक्ति सदा वर्तमान से असन्तुष्ट रहता है । उसके मन मे वर्तमान के प्रति असन्तोष छुपा रहता है । वस्तुत यह असन्तोष व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की प्रगति का मुख्य तत्त्व है, जो उन्हे खडे होने और कठिनाइयो से सघर्ष करने की प्रेरणा देता है । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि वर्तमान की सीमा मे ही सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति अथवा राष्ट्र कभी भी आगे नही वढ सकते । उनकी कर्तृत्व शक्ति समाप्त प्राय हो जाती है । उनकी गति-प्रगति अवरूद्ध हो जाती है ।

असन्तोष अनेकानेक समस्याओ को जन्म देता है । समस्याओ के समाधान के लिए फिर प्रयत्न-पुरुपार्थ जागता है । व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र का प्रयत्न-पुरुषार्थ जागृत होते ही प्रगति एव उन्नति के शत-शत द्वार स्वत ही उद्घाटित होते चले जाते है । फिर अभ्युदय तथा नि श्रेयस उनके समीप मे स्वत आ उपस्थित हो जाते है । ☐

□ कृषक जब बीज बोने की तैयारी करता है तो वह भूमि को सर्व प्रकार के घास-पात से मुक्त कर लेता है। फिर उसमे बीज डालता है। उसका यह श्रम एक दिन अपना रग लाता है। कृषक का जीवन प्रसन्नताओ से भर उठता है, जब उसके घर मे फसल की पहली खेप पहुँचती है।

यही बात हमारे जीवन के सम्बन्ध मे भी है। यदि हमे अपनी अन्तर्भूमि मे परमानन्द रूप परमात्म भाव का बीज बोना है तो अपनी मनोभूमि को सर्व प्रकार के काषायिक भावो के कटीले घास-पात एव झाड-झखाडो से मुक्त करना होगा। साथ ही परपरागत शब्दो एव सिद्धान्तो से चित्त जितना स्वतत्र होगा, सत्य के लिए उसके द्वार उतने ही मुक्त हो जाते है। केवल मुक्त चित्त ही मुक्ति की अनुभूति करने मे समर्थ हो सकता है। □

☐ विश्व मे उभरती जा रही अनेकानेक व्याधियो के लिए नित नये औषधोपचारो का आविष्कार हो रहा है। अनेकानेक क्लिनिक खुल रहे हैं इसके लिए अनेक अनुसधान शालाएँ दिन रात नए-नए आविष्कारो को जन्म दे रही हैं। इसीलिए शारीरिक दृष्टि से रुग्णता का अनुपात आज घट रहा है, स्वस्थता वढ रही है। अनेक असाध्य वीमारियो को समाप्त प्राय कर देने का आज दावा किया जा रहा है चिकित्सा विशेषज्ञो द्वारा, जो किसी सीमा तक ठीक भी है।

परन्तु यह वर्तमान पीढी का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि शारीरिक रुग्णता घटने के साथ वैचारिक रुग्णता वढती जा रही है उसमे। आज वैचारिक दृष्टि से व्यक्ति नित्य दुर्वल होता जा रहा हैं। यही कारण है आज का युवावर्ग आक्रोश एव पथभ्रष्टता का शिकार वन गया है। वर्तमान पीढी के असन्तोष का कारण यही वैचारिक रुग्णता है। हिप्पीवाद की जनक यह वैचारिक रुग्णता ही तो हैं। मनुष्य का चिन्तन भटक जाता है उसके कारण। उसका प्रवुद्धमन गलत दिशा पकड लेता है। इसीलिए कहना पडता है उसके खोये गए दिशा-वोध को देखकर कि शारीरिक रोग की अपेक्षा मानसिक अथवा वैचारिक रोग अधिक खतरनाक है। जिसके अनुकूल उपचार की आज जल्दी से जल्दी आवश्यकता है। ☐

☐ प्रज्ञा का जन्म अह से नही, प्रेम से होता है। प्रेम न राग है, न विराग। वह हृदय का परम सहज भाव है। प्रेम आनन्द के अतिरिक्त और कुछ भी नही जानता है। प्रेम न तो कष्ट जानता है और न भार। वह तो आनन्दरस का निर्मल निर्झर है। आनन्द के अतिरिक्त उसकी अन्य कोई अनुभूति ही नही है। भीतर ही खोजिए, प्रेम का परमात्मा वहाँ सदा उपस्थित है। प्रेम को तलाशिए। शेष सब उसके पीछे स्वय चला आता है। प्रेम के दो शत्रु है राग और विराग। इन दोनो से उपराम हुए चित्त मे प्रेम का जन्म होता है। प्रेम मानव जीवन की शाश्वत प्रवृत्ति है। प्रेम शून्य को भी पढ लेता है। प्रेम को शब्दो मे लिखने का प्रयास व्यर्थ है। क्योकि वह शब्दो मे नही समाता है। प्रेम नि शब्द है। प्रेम एक सहज नैसर्गिक अनुभूति है। जो निस्सीम है। भूमा है। ☐

□ कभी-कभी प्रवुद्ध चेता व्यक्तियो की ओर से प्रश्न आता है कि धर्म क्या है ? वह एक सगठन है अथवा साधना ? इस सम्वन्ध मे इतना ही कहना है कि धर्म जव सगठित होना प्रारम्भ हो जाता है तो वह सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेता है। सम्प्रदाय की वाह्य जीवन मे थोडी-वहुत उपयोगिता वेशक हो सकती है, परन्तु आन्तरिक जीवन मे यह सर्वथा अनुपयोगी है। धर्म है, वैयक्तिक चेतना का अन्तर्मुखी जागरण। जो जीवन को प्रकाश से भर देता है। जहाँ भटक जाने को अवकाश ही नही है। सम्प्रदाय है भीड का शोपण। धर्म के लिए चेतना का भीड से, समूह से सर्वथा स्वतन्त्र होना आवश्यक है। चेतना की भीड से स्वतन्त्र अथवा पृथक होने की प्रक्रिया विशेप ही साधना है। □

☐ ज्ञान प्रेषणीय नही है। सम्प्रेषण प्रक्रिया द्वारा हम इस को अन्य तक सम्प्रेषित नही कर सकते। यह तो अन्तर से उद्‌बुद्ध एक ऐसा प्रकाश तत्त्व है, जिसे हम प्राप्त कर सकते हैं, भोग सकते हैं, अनुभूति मे ला सकते हैं। यह तो स्वय उद्‌बुद्ध चेतना-जगत की स्फुरणा विशेष है। जिससे अनेक अद्‌भुत कार्य भी सम्पादित किये जा सकते हैं।

हाँ, विद्या दूसरो तक अवश्य ही प्रेषित की जा सकती है। कुछ स्थूल धरातल पर आ जाने के कारण इसका सम्प्रेषण सभव बन पडता है। जबकि ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म आत्म तत्त्व से सबद्ध उसका अपना ही शुद्ध स्वरूप है। बुद्धि स्थूल है, इसलिए वह स्थूल को ही पकड पा सकने की सामर्थ्य रखती है, सूक्ष्म को नही। अतः विद्या प्रेषित की सकती है, ज्ञान नही। ज्ञान आत्मानुभूति की धारा है। वह सूक्ष्म है। ☐

□ समय प्रतिक्षण आगे दौडता है। यही कारण है कि वह नित्य नूतन होता है। प्रतिपल उसमे नवीनता परिलक्षित होती है। समय रोज नया होता है और आदमी वही पुराना का पुराना वना रहना है। समय नित्य नया होता जाता है और आदमी पुराना। यही मृत्यु की ओर वढना है। स्पष्ट कहिए तो यही मृत्यु है।

समय के साथ नित्य नूतन वने रहना जीवन है। समय और जीवन मे किंचित् भी फासला नहीं चाहिए। यही दौडते समय को पकडना है, जो प्रवुद्ध चेत्ता व्यक्तियो के ही वश की वात है। जो समय से पिछड जाता है उसका व्यक्तित्व मृत्यु की राह पर दौड चलता है। इसलिए समय तथा व्यक्ति मे जरा भी फासला नही चाहिए। व्यक्ति और समय के सहचारी होने पर ही पता चलता है कि वस्तुत जीवन क्या है। □

☐ अन्य ग्रहो अथवा दूसरे लोको पर विजय पताका फहराने की धुन मे मानव को अपनी यह पृथ्वी नही भुला देनी चाहिए। इस पार्थिव मानव के लिए वस्तुत उसकी अपनी पृथ्वी ही सबसे अधिक उपयोगी है, सुखद और प्रिय है। अभी पृथ्वी पर ही इतनी व्यथा एव दु ख है कि उससे उसको मुक्ति देने के लिए घोर प्रयास करना आवश्यक है। ऐसा न हो कि मानव नए क्षितिजो की ओर निहारने मे इतना व्यस्त-मस्त हो जाए कि अपने घर को ही भूल जाए, उसके प्रति अपने कर्तव्य से ही मुँह फेर बैठे। मानव अन्तरिक्ष की कितनी ही लम्बी यात्रा क्यो न कर आए, जो आनन्द, जो प्यार, जो आत्म-सुख उसे पृथ्वी पर मिलता है, वह अन्यत्र कही पर भी नही मिल पाता। ☐

☐ पतन मे उत्थान की सभावनाएँ निहित हैं। गिरना उठने की पूर्व भूमिका है। गल्तियो मे सुधार की गुजाइश रही हुई है। उलझाव सुलझाव की ही पूर्व स्थिति है। यदि जीवन मे उलझनें पैदा ही न हो तो सुलझाने की कला को प्राप्त करना कैसे सभव है? हर नई परिस्थिति का उत्पन्न होना जीवन की निशानी है, और है बहुत कुछ सीख लेने का उपक्रम। बिना उत्तरदायित्व को वहन किए अनुभव कैसे प्राप्त होगा? ज्ञान कैसे मिल पा सकेगा? ☐

☐ हथेली पर सरसो उगाने के क्षणिक प्रयास मे शक्तिक्षरण मत करो, अपितु सतत परिश्रमशील बनो। निरन्तर श्रम के आराधक बनो तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण रखो। नए परिवर्तनो से घबराओ मत। बदलाव आने दो। गर्मी के पश्चात् वर्षा का आना आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। यह प्रकृति का नियम है। परिश्रम हमेशा परिवर्तन को जन्म देता है। श्रम विमुख कुण्ठा नए आयाम खोलने मे सदा से असमर्थ रही है। उर्वरा भूमि में डाला गया बीज यदि परिश्रम के जल से सिंचित न हो, तो क्या कुछ उपलब्धियाँ दे सकता है वह ? क्या फसल मिल सकती है ? क्या खेती लहलहा सकती है ? क्या फूल खिल सकते हैं ? उत्तर होगा नही। गति-प्रगति के लिए बीज को टूटना ही होगा। अपने आप मे परिवर्तन लाना ही होगा। तभी वह प्रस्फुटित एव अकुरित हो सकेगा। उसका यह विस्फोटक रूप ही उसके जीवित होने का परिचायक होगा। इसलिए परिवर्तनो से घबराओ मत। कुण्ठाओ को जीवन मे स्थान मत दो। नए आयाम खुलने दो। नए मोड आने दो। यह परिवर्तन ही प्रगति का सूचकांक होगा। ☐

☐ जब तक तुम आकाश की ओर ही देखते-निहारते रहोगे, ग्रह-नक्षत्रो की ओर ही झाकते रहोगे, तब तक तुम्हारी ओर किसी का भी ध्यान आकर्षित नही हो सकेगा। तुम्हे कोई भी नही देख पाएगा। लेकिन तुम्हारा समग्र ध्यान जब धरती की ओर जाएगा तभी सबका ध्यान तुम्हारी ओर आएगा। तुम्हारा परिश्रम-पुरुपार्थ तुम्हें दुनिया की दृष्टि का केन्द्र विन्दु बना देगा। इसलिए भाग्य के सहारे जीना छोडो। वर्षा मे यदि छत टपक रही है तो टपके के नीचे से चारपाई सरका कर ही सन्तोष मत कर बैठो। पुरुपार्थ को जागृत करो। भरे हुए पानी को उलीच कर बाहर करो और छत के छेदो को बन्द करो। परिश्रमशील बनो। फिर आनन्द और सुख के द्वार तुम्हारे वास्ते सदा-सदा के लिए उद्घाटित हैं। जहाँ तुम निर्बाध प्रवेश पा सकते हो। ☐

☐ मौसम कभी आदमी के अनुकूल नही हुआ करते, आदमी को ही स्वय मौसम के अनुकूल होना होता है। देश मे आज सामाजिक एव राष्ट्रीय नव चेतना का मौसम आया है, तो इससे घबराइए मत। डरकर भागो नही, बदलो। भगोडी वृत्ति ने ही जीवन मे अनेकानेक अवरोध पैदा कर दिए हैं। जो प्रगति को नकारने के लिए दुर्बल मनोवृत्ति वाले मनुष्यो को मजबूर कर रहे हैं। आज नकार से नही, स्वीकार से काम चलेगा। समस्याएँ नकारने से कभी सुलझ नही पायेंगी। उन्हे सहर्ष स्वीकारना ही होगा। नव प्रभात मे आँखें खोलो। प्रकाश किरणें प्रस्फुटित हुआ चाह रही हैं। जमीन तैयार है, बीज डालो। भाग्य के अकुर नही श्रम के कुल्ले बिना फूटे नही रहेगे। ☐

□ वैज्ञानिक की मस्तिष्क चेतना को कभी बाँधकर नही रखा जा सकता। इसमे जहाँ वन्धन आया कि यह कुण्ठित हो जाती है। फिर नव सृजन अथवा नए आविष्कार की आशा-आकाक्षा हम नहीं रख सकते इमसे। ऐसी स्थिति मे हमारी सब अपेक्षाएँ समाप्त प्राय ही समझिए। इसलिए वैज्ञानिक की मनश्चेतना अथवा मस्तिष्क को भविष्य के सपने संजोने से दूर नही किया जा सकता है, और न दूर करना हितावह ही होगा। उसके आज के सपनो मे ही आने वाले कल की समस्याओ का समाधान मिल सकेगा। □

☐ खण्डहर टूटेंगे तभी तो नए मकान वन सकेंगे। नीव खुदेगी तभी तो ऊँचे प्रासाद का अस्तित्व सामने आ सकेगा। नदी उमडेगी तभी तो भूमि उर्वरा, उपजाऊ होगी। नव निर्माण अपने लिए एक पूर्व भूमिका मागता है। बिना पूर्व भूमिका के उसका अस्तित्व असम्भव है। पानी वरसेगा तो बहेगा ही। नदी उमडेगी तो तटवर्ती पेड-पौधे, चाहे वे कितने ही विशाल क्यो न हो, उखडेंगे ही। कूल-कगार टूटने जैसी स्थिति मे आयेंगे ही। यह तो युग सत्य है। जिसको नकारा नही जा सकता। यह तो नव निर्माण की माँग है। इससे घबराना क्या? पुरातन जर्जरित हो, खण्डहर वने वृन्दावनो के मीठे व्यामोह मे क्यो उलझे हो? स्थान-स्थान पर नए वृन्दावनो की सृष्टि करो। नए आनन्द-वनो का निर्माण करो। धर्म, कला, सस्कृति, साहित्य और इतिहास इन्हे क्यो बांधकर रखते हो? इन्हे भी नवस्फूर्त चिन्तन एव निष्ठापूर्ण श्रम द्वारा नए मोड लेने दो। ☐

☐ ससार का कोई भी पदार्थ न हमे वाँधता है, न हमे मुक्त करता है। और तो क्या, भगवान भी किसी का वुरा या भला नहीं कर सकते। जो कुछ भी है सव हमारी भावना पर ही निर्भर है। भावना ही ससार का हेतु है, और यही है मुक्ति का हेतु भी। चमत्कार मनुष्य की अपनी भावना का है, वाह्य वस्तु का नही। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।" "जाकी रही भावना जैसी प्रभु सूरत देखी तिन तैसी।"

वस्तु स्वभाव को मत देखिए। मत उसे दोप दीजिए। वस्तु हमे कुछ भी प्रदान नही करती। यह तो हमारा मनोभाव है, जो वस्तु को निमित्त मानकर अपने अन्दर से ही जागृत होता है। ☐

☐ क्या कभी आपने सोचा है—फूल किसलिए खिलते हैं ? फूलो मे सुगन्ध किसलिए आती है ? फूल इसलिए खिलते हैं, क्योकि उनका अन्तरग साफ स्वच्छ होता है। फूलो मे सुगन्ध इसलिए आती है, क्योकि उनके अन्तर मे मैल नही होता।

जीवन-पुष्प भी ऐसे ही खिल सकता है, बशर्ते वहाँ हृदय की स्वच्छता, निर्मलता हो। जीवन-पुष्प सुगन्धित पराग से भर सकता है, बशर्ते किसी भी प्रकार की अन्तर मे मलिनता न हो। ☐

☐ जो अपनी दुर्बलताओ से परिचित है, वह कभी न कभी अपने को उनसे पृथक् भी कर सकता है। उनको अपने अन्तर से निकाल बाहर भी कर सकता है। जो झूठे घमण्ड एव मिथ्या अह को पालकर यह समझता है कि मुझमे कही कोई दुर्बलता है ही नही, मैं पूर्ण हूँ, तो फिर वह नई वात कहाँ सीख पाएगा, क्यो सीख पाएगा ? मिथ्या अभिमान के चौखटे मे फिट अपनी कुरूप तस्वीर को ही वह सर्व सुन्दर एव सर्वश्रेष्ठ कलाकृति मानने के व्यामोह मे ही उलझा रहेगा। इस हालत मे जीवन-विकास के मार्ग से वह कोसो दूर पिछड़ जायेगा। भविष्य मे जाकर यह पिछडन उसके लिये एक अभिशाप वन सकती है। ☐

☐ तूफान आते हैं उन्हे आने दो। अन्धड घुमडते है उन्हे घुमडने दो। इनसे घवराकर इधर-उधर छुपने का विफल प्रयत्न मत करो। इस प्रकृति के प्रागण मे सहज रूप से जो हो रहा है, उसे होने दो। अधड या तूफान का आ जाना कोई त्रासदायक परिस्थिति नही। वह भी निसर्ग की एक आवश्यकता है। अधड का आना वृक्ष के लिए अपने जरा जीर्ण पत्रो एव शाखाओ से मुक्ति है। निरर्थक बोझ से छुटकारा है। ठीक इसी प्रकार से समाज एव राष्ट्र मे भी परिवर्तन के अन्धड आते ही रहते है, युग बोध को लेकर। इससे घवराने की आवश्यकता नही। नव सृजन की नन्ही कोमल कोपलो के प्रस्फुटित होने की यह पूर्व प्रक्रिया है। समाज मे उथल-पुथल, द्वद्व एव सघर्ष की घटनाओ द्वारा समाज को अपने निरर्थक भार से छुटकारा ही मिलता है।

किन्तु इसके साथ एक शर्त और है कि जो क्रातिकारी सकल्प अपनी दुधर्षता मे उद्देश्य की जड़ें ही उखाड फैंके, वह उस प्रकृत्ति प्रकोप की भाति ही अश्रेयष्कर है, जो अपने अध प्रवाह मे धान के कितने ही खेत निर्मूल कर देता है। परिवर्तन लाइये, परन्तु विवेक बुद्धि के साथ। अन्धड़ को आने दीजिए किन्तु विवेक के नियन्त्रण मे। ☐

□ खेत में वीज डाल देने के पश्चात् कृषक को कितनी लम्बी प्रतीक्षा करनी होती है वीज से पौधा वन जाने तक ! अभी आम का विरवा रोपा और अभी आम खाने को मिल जाएँ तुरन्त ही, ऐसी आशा रखना एक असम्भव कल्पना है। वीज के अकुरित एवं फलित होने की प्रतीक्षा तो करनी ही होगी। प्रतीक्षा का भी अपने आप मे एक अनिर्वचनीय आनन्द है। और सत्य के लिए तो प्रतीक्षा ही परमात्मा है। इसलिए उतावले मत वनिए। जल्दवाजी मे किया गया कार्य सताप को जन्म दे जाता है। प्रतीक्षा हमारे धैर्य की परीक्षा भी है। धैर्य का दामन छोड देने से जीवन के लम्बे मैदान को पार नही किया जा सकता। यह धैर्य एव प्रतीक्षा-वृत्ति ही हमारे पुरुषार्थ के फलित होने मे हमारे लिए परम सहयोगी है। □

☐ परिवर्तन का अर्थ है गति। गति का अर्थ है जीवन। वदलाव जीवन की जीवन्तता का सूचक है। स्थिति का अर्थ है गतिहीनता। स्थितिवादी मन-मस्तिष्क वाला व्यक्ति कभी प्रगति कर सकेगा? इसकी संभावना वहुत कम है। स्थितिवादिता मानव को हर दृष्टि से पगु वना डालती है। उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। शनै शनैः वह जडता का शिकार वन जाता है।

आप देखते हैं, नदी का जल प्रवाह चल रहा है, गतिशील है। आने वाला पानी आगे वढ रहा हैं। पीछे आने वाले जल-कण समूह रूप से उसका स्थान ले रहे है। पानी मे गतिशीलता है इस प्रकार से यह गतिशीलता, निरन्तर का प्रवाह ही उसकी स्वच्छता का मूल कारण है। यह वहता हुआ पानी नदी से अलग हट कर यदि एक गढे मे रुक जाए, स्थिर हो जाए तो आप जानते है इसका परिणाम क्या होगा? गढ़े मे कैद हुआ पानी सड जायेगा और अनेक जीवाणु उसमे उत्पन्न हो जाएँगे। वह वदवू देने लगेगा। उसकी स्वच्छता के लिए उसका वहना ही श्रेयस्यकर है। यही स्थिति जीवन के क्षेत्र मे भी है। जीवन की पावनता, स्वच्छता को अक्षुण्ण वनाए रखने के लिए उसका भी गतिशील रहना अर्थात् परिवर्तन की प्रक्रिया को समय-समय पर स्वीकारते रहना भी आवश्यक है। परिवर्तन से घवराइए नही। यह कोई हौवा नही है। इसको विचार की आँखो से देखिए, और सही रूप को स्वीकारने में हिचकिए नही। यह जीवन्त जीवन का प्रतीक है ☐

☐ साहस मनुष्य को जीवन के क्षेत्र मे आगे वढने की प्रेरणा देता है। उसमे नव चेतना का सचार करता है। एक नव कर्त्तव्य-स्फूर्ति जागृत करता है। साहस के अभाव मे मनुष्य एक कदम भी आगे नही वढ सकता। भय की भावनाएँ भूत वन कर उसको घेरे रहेगी। परिणाम स्वरूप वह इस ओर से कुण्ठित और पगु वनकर रह जाएगा। साहस अपने स्वय मे एक सुनिश्चित एव महान विजय है। नव्वे प्रतिशत काम साहस स्वय कर लेता है, वाकी के लिए व्यक्ति के पराक्रम की दरकार रहती है। वडे-वडे दु साध्यकार्य इस साहस के वल पर मानव आज तक कर पाया है। जितने भी विश्व भर मे आश्चर्यजनक कारनामे हैं सव साहस की देन हैं। साहस के आधार पर वडे-वड़े परिवर्तन विश्व मे आए हैं और आ रहे हैं। ऐवरेस्ट की वुलन्दी पर मानव के चरण चिह्नो का अकित होना, इस साहस के ही कारण सभव हो पाया है। साहसी व्यक्ति के शब्द कोष मे असम्भव शब्द के लिए स्थान ही नही होता। वह इस असम्भव से परिचित ही नही होता। इसलिए साहसी वनिए। क्या व्यावहारिक, क्या सामाजिक, क्या आध्यात्मिक क्या राष्ट्रीय एव क्या राजनीतिक? सभी क्षेत्रो मे साहस की आवश्यकता है। सफलता हमेशा साहसी व्यक्ति के ही चरण चूमा करती है। ☐

☐ जब तक मनुष्य का स्वय का अपना स्वतन्त्र चिन्तन नही होगा, वह समाज को कुछ दे सकेगा दिशा बोध के रूप मे, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। इसलिए आज की सबसे बडी आवश्यकता है व्यक्ति के लिए स्वतत्र रूप से सोचने समझने की, वैज्ञानिक रूप से चिन्तन करने की। अभी तक हमारे चिन्तन की रोशनी को बधे बँधाए रूप मे अतीत से चले आ रहे विचारो का रहस्यमय कुहासा ढके चला आ रहा है। स्वतत्र वैज्ञानिक चिन्तन ही रहस्य का भेदन कर सकता है और उपलब्धियो के मार्ग खोल सकता है। आज के बुद्धि-कौशल पूर्ण युग मे आवश्यकता है, व्यक्ति वैज्ञानिक स्वतत्र चिन्तन की दिशा में अपने कदम बढाए। जब तक मनुष्य का स्वय का चिन्तन नही होगा किसी भी विषय में, तब तक उसके अभ्युदय की बातें केवल कल्पना लोक की सैर मात्र ही है। यथार्थ के कठोर धरातल पर टिकने के लिए स्वतत्र चिन्तनशील व्यक्तियो की ही आवश्यकता होती है। स्वतत्र चिन्तन की आवश्यकता और महत्ता को समझिए तथा इस दिशा में अपने कदम बढाइए। स्वतत्र चिन्तन से आपका मार्ग प्रकाशित हो उठेगा। पथ के नुकीले काँटो एव गढो से आप स्वयमेव ही बचते चले जाएँगे। स्वतत्र चिन्तन की ओर अपने विचारो की वल्गा को मोडिए। फिर दिशा-बोध आप स्वयं ही पा जायेंगे। सही सोचना सही कर्म के रास्ते खोल देता है। ☐

□ साधक जब साधना करने चलता है तो उस के लिये आत्म विश्वास और आत्म विस्मृति दोनो ही अनिवार्य हैं। आत्म विश्वास की अनिवार्यता इसलिये है कि मनुष्य की शक्ति और उसके लिए उपलब्ध साधन सीमित हैं। अत वह कही हीन भावना का शिकार न हो जाए। उसे अपनी आत्म-शक्ति का भान रहे। आत्म-विस्मृति इसलिए आवश्यक है कि वह अपने को भूल कर अपनी इच्छा वृत्तियो को मिटाकर अनासक्ति और आत्म समर्पण का पथ ग्रहण कर सके। जब तक साधक अपनी साधना के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण की पूर्ण तैयारी नही रखेगा तब तक वह साधना-मार्ग मे प्रगति नही कर सकेगा। स्वय को भुला देना और अपनी इच्छा वृत्तियो को समाप्त कर देना ही समर्पण भावना को जन्म देता है। यदि स्वय की इच्छा की क्षीण सी भी रेखा बनी रही तो समर्पण अधूरा ही रह जाएगा और अधूरापन कभी भी साधना को सिद्धि मे परिवर्तित नही कर सकता। □

□ आवश्यकता और तृष्णा मे वडा ही अन्तर है। आवश्यकता जहाँ मनुष्य को आगे वढने मे सहायक है, वहाँ तृष्णा उसको पतन की ओ ले जाने वाली है। आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है, किन्तु तृष्णा की नही। आवश्यकता फिर भी सीमा मे आवद्ध है, जवकि तृष्णा का अन्तरिक्ष के समान कही कोई छोर ही नही है, जिसका कही कुछ किनारा ही नही मिल पाता। यदि पेट मे भूख लगे तो उसको तृप्त किया जा सकता है, परन्तु मन मे धन की अथवा अन्य किसी भी प्रकार की तृष्णा उत्पन्न हो तो वह कैसे वुझ सकती है? पेट की सीमा है, परन्तु पेटियो की नही। यह एक सामाजिक माग रही है कि मनुष्य स्वयं को तृष्णा से दूर रखते हुए, साथ ही आवश्यकताओ को भी सीमित करते हुए, दूसरो को भी समान विकास का अवसर प्रदान करे। तभी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र मे शान्ति का वातावरण उद्भूत हो सकता है। □

☐ व्यक्ति एक महत्वपूर्ण इकाई है। समस्त दायित्वो का बोध उसमे ही प्रतिफलित होकर उभरता है। प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक व्यवस्था मे व्यक्ति सबसे महत्वपूर्ण है। वह अपने दायित्वो का निर्वाह अथवा मूल्याकन तभी कर सकता है, जब उसका जीवन नैतिकता की परिधि मे आबद्ध हो। नैतिक मूल्यो का बन्धन उसके लिए अनिवार्य है। नैतिक मूल्य समाप्त हो जाने के बाद, व्यक्ति स्वय समाप्त हो जाता है। इस प्रकार से व्यक्ति का अवमूल्यन होते ही समाज एव राष्ट्र भी उससे प्रभावित हुए बिना नही रहता। क्योकि व्यक्तियो का समूह ही तो समाज अथवा राष्ट्र का रूप ग्रहण करता है। इनका अपने आप मे स्वतन्त्र रूप से कुछ भी तो अस्तित्व नही। समाज एव राष्ट्र व्यक्ति का विराट् रूप मात्र है। समाज का स्वरूप व्यक्ति ही निश्चित करता है। व्यक्ति के नैतिक मूल्यो की रक्षा तभी सभव है, जब व्यक्ति अपने स्वभाव, देश और परम्परा के अनुरूप अपने धर्म का पालन करे। ☐

□ विचारो का हमारे जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। विचार हमारी मनोवृत्तियो का प्रकटीकरण है। विचार वह दर्पण है, जिसमे हमारे आचारगत जीवन की झलक मिलती है। विचारो का जीवन मे वहुत अधिक महत्व है। यह एक स्पष्ट तथ्य है कि मननशील होने के कारण मनुष्य का मन विचारो से कभी शून्य नही रहता। मन सागर मे अनेक विचारोर्मियाँ उभरती तथा विलीन होती रहती है। लेकिन निरर्थक विचार मनुष्य के हृदय को ऐसे ही खा जाते है, जैसे लोहे को जग खा जाता है। इसलिए निरर्थक विचारो से हमे सदा सावधान ही रहना चाहिए। ये हमारी प्रगति मे वाधा भी उपस्थित कर सकते हैं। मानव के मनोवल को तोड देने मे ये वडा ही सफल पार्ट अदा करते हैं। एक वार मनोवल टूटा कि व्यक्ति सव प्रकार से टूटता ही चला जाता है। जिसका सिलसिला शायद ही समाप्त हो सके। अत निरर्थक विचारो से सदा सावधान एव वचते रहिए। □

☐ परोपकार का अर्थ किसी की कुछ आर्थिक सहायता कर देना अथवा गिरे हुए को उठा देना मात्र ही नही हैं। परोपकार की यह व्याख्या, या परिभाषा अब पुरानी पड चुकी है। आज का प्रबुद्ध युग-चिन्तन इससे आगे बढ गया है। यदि हम इस पुरानी व्याख्या अथवा परिभाषा को ही पकड कर चलेंगे, तो इसका अर्थ तो यही हुआ कि पहले आप लोगो के गिरने की प्रतीक्षा कीजिए या उन्हे गिरने दीजिए और फिर परोपकार के नाम पर उन्हे उठाने के लिए आगे बढिए। आज का प्रबुद्ध युग-चिन्तन कहता है कि आप किसी व्यक्ति के गिरने की स्थिति ही मत आने दीजिए। क्यो न पहले से ही समाज मे ऐसी व्यवस्था कर ली जाए कि किसी के गिरने की सम्भावना ही न रहे। सामाजिक व्यवस्था की स्थापना मनुष्य के अपने हाथ है। समाज रचना उसकी अपनी देन है। वह इसमे मन चाहा परिवर्तन ला सकता है। इसलिए नव युग चिन्तन के सन्दर्भ मे नव समाज रचना तथा नव परिभाषाओ का प्रकाश आने दीजिए। कुछ नए प्रतिमान स्थापित होने दीजिए। ☐

□ प्रेम का लोक वडा पवित्र है। उसमे वासना के लिए तनिक भी स्थान नही। जहाँ वासना प्रारम्भ हुई कि प्रेम का पावन मार्ग समाप्त हो जाता है। फिर वह प्रेम न रह कर मोह की निम्न श्रेणी मे आ जाता है। जहाँ मोह है वहाँ पतन है। प्रेम पावन प्रकाश है, मोह गहन अन्धकार। प्रेम अमरत्व है, मोह मृत्यु। प्रम महान है मोह निम्न है। प्रेम आदरणीय एव स्पृहणीय है, मोह सर्वथा त्याज्य। प्रम प्रतिदान नही चाहता, जवकि मोह चाहता है। प्रेम परमात्मा से जोडने वाला है तो मोह तोड़ने वाला। प्रेम हृदय की वह लहर है जो जीवन को आनन्द से भर देती है, जवकि मोह जीवन को द्वन्द्व तथा दुखो के दलदल मे फंसा डालता है। एक तारक है तो एक मारक। एक ग्राह्य है तो एक त्याज्य। एक हमे हमारी आत्म वृत्तियो के समीप लाता है तो एक दूर धकेल देता है। एक हमे आत्म-केन्द्रित करता है तो एक हमे वाहर मे विखेर देता है। इसलिए प्रेम स्तुत्य है समीचीन है। जीवन के लिए अमृत है। □

☐ अधिकांश लोगो की मन के प्रति बडी ही शिकायत होती है। वे कहते हैं मन बडा तग करता है । जब भी साधना करने बैठते हैं तो यह इधर उधर भागने लगता है। फिर ऐसी साधना से क्या लाभ ? ठीक है मन भागता अवश्य है, परन्तु वापिस भी तो वह स्वय ही आ जाता है कुछ काल पश्चात्। मन चला गया कोई बात नही, शरीर पर तो आप अपना नियत्रण रखिए। उसको अवश्य ही स्थिर आसन से बैठाए रखिए। यह भी एक बहुत बडे लाभ का काम है। जरा विचार कीजिए, मन चला गया विषयो की ओर, मन ने शरीर को भी उस ओर ही गतिशील होने के लिए प्रेरित किया। पर आपने शरीर तो रोके रखा, यह समझ कर कि विषयो की ओर प्रवृत्त होना ठीक नही है। यह तो गलत काम है। नही करना है। इस प्रकार के शरीर नियत्रण से आप बडे अधकार मे जाने से बच गए। एक प्रश्न और है कि आपके तन को विषयो से किसने रोका ? यह रोकने वाला भागा हुआ मन ही तो था। जो भाग तो गया, पर इसने झट वापिस आकर शरीर को जाने से रोक दिया। इस प्रकार तन की स्थिरता मन को कुछ समय पश्चात् अवश्य ही वापिस ले आती है। इसलिए साधक को निश्चित होकर तन-मन की स्थिरता को बनाए रखते हुए साधना के क्षेत्र मे अविराम गतिशील रहना चाहिये। ☐

☐ अशुभ से शुभ की शक्ति कही अधिक है। धूमिलता से से प्रकाश कही तीव्रगति से आता है। एक शीशे को ले लीजिये। इसको धूमिल होने मे समय की काफी अपेक्षा है। एक-एक करके धूल-कण उस पर जमते चले जाते हैं, तब जाकर वह काफी देर मे कही धूमिल हो पाएगा। परन्तु उसको स्वच्छ एव उज्ज्वल करने मे अधिक समय नही लगेगा। बस जरा दबाव से उस पर हाथ फिराइए कि उसकी स्वच्छता उभर आती है। इसलिये शुभ्रता अधिक शक्तिशाली है धूमिलता की अपेक्षा। मनुष्य वस्त्र का उपयोग करता है। शनै शनै कुछ दिनो अथवा सप्ताहो मे जाकर वह मलिन हो पाता है, परन्तु उसे स्वच्छ करने मे कितना समय लगता है ? बस आधा घटा लगा, धोया और साफ। आत्मा के सम्बन्ध मे भी कुछ ऐसा ही है। आत्मा भी ऐसे ही शुद्ध एव पवित्र होती है। इसलिए अशुभ से शुभ की शक्ति बडी है। मलिनता की अपेक्षा शुभ्रता शीघ्रता से आती है। ☐

☐ जन्म और मृत्यु, दोनो ही जीवन के शाश्वत तत्व हैं। दोनो ही परिवर्तन की एक प्रक्रिया मात्र हैं। दोनो एक ही छडी के दो छोर। बचपन मरता है मनुष्य नौजवान होता है। स्वय तो नही मर जाता वह। बस, बचपन एक परिवर्तन प्रक्रिया से गुजरा कि वह नौजवान नजर आया। इसी प्रकार नौजवानी मरती है बुढापा आता है, और बुढापा जब परिवर्तन प्रक्रिया से गुजरता है अर्थात् बुढापा मरता है तो फिर बचपन आ जाता है। इस प्रकार यह परिवर्तन प्रक्रिया चलती ही रहती है। इसलिए बुढापे के मरने को अपना मरण मानना, समझना अज्ञान है। ये तो कुछ प्रक्रिया विशेष हैं जिनके बीच होकर यह भौतिक शरीर गुजरता हुआ अनेक अनुभूतियाँ करता है आत्मा के सयोग से। इन प्रक्रियाओ का आत्मा पर मूलत कोई असर नही होता। आत्मा तो एक अमर तत्व है। ☐

☐ समुद्र मे मछलियाँ है। मनुष्य भी कभी कभी समुद्र मे चला जाता है। वहाँ रहता भी है नौका या जहाज मे बैठ कर। परन्तु उसका लक्ष्य उस मे रहने का नही है। उसका लक्ष्य है समुद्र से पार होना। वह उसमे रहना नही चाहता। वह तो पार होने के लिए ही उसमे कुछ दिन निवास करता है। जब कि मछलियाँ उससे बाहर निकलना ही नहीं चाहती। ज्ञानी और अज्ञानी जीव मे यही अन्तर है। ससार समुद्र मे यदि रहना भी हो तो ज्ञान की नाव मे बैठ कर रहिए। जिससे पार होने मे आसानी रहे। ☐

☐ कहने योग्य ही कहो, अन्यथा मौन रहो। अधिकाश झगडे और वितण्डावाद अधिक बोलने की आदत के ही प्रतिफल होते हैं। जितना कुछ जानते हो वह सब कुछ उगल देने के लिए लालायित मत रहिए। अपने बोलने की आदत पर नियन्त्रण रखना सीखिए। आप जानते हैं भगवान अनन्त ज्ञानी थे। वे लोकालोक को हस्तामलकवत् जानते थे। पर उन्होने कहने योग्य ही कहा, अधिक नही। **"जेय तस्सपन्नवणा जोगे से भासह तित्थयरा।"** ☐

□ वाजार मे आप साधारण वस्तु भी लेने जाते हैं, तो खूव देख-भाल कर लेते हैं। मामूली सा मिट्टी का घडा भी आप लेते हैं तो उसे भी खूव ही ठोक वजा कर देख लेते हैं, कही फूटा तो नही है, इसमे पानी भी ठडा रहेगा या नही, काफी विचारते हैं इस प्रकार। शाक भाजी भी सडी-गली नही लेना चाहेगे आप। इस प्रकार से शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जव इतनी सावधानी रखते हैं आप, तो मन के स्वास्थ्य के लिए कुछ प्रयत्न क्यो नही ? मानसिक स्वास्थ्य वहुत वडी चीज है। सडे-गले गदे विचार मन मे मत डालो। मन की पवित्रता का सदा ध्यान रखो। शुद्ध सकल्पो से मन को सजाओ। "तन्मे मन शिव संकल्पमस्तु" की भावना सदा रखो। □

☐ पाप करके भी कुछ लोग सुख और चैन से रहते हैं, जब कि सच्चे एव सदाचारी व्यक्ति दुखी और परेशान रहते हैं, ऐसा क्यो ? यह एक ज्वलन्त प्रश्न है। इस का उत्तर यो है—

सुख दो प्रकार के होते हैं—भौतिक और मानसिक। पापी व्यक्ति को कभी भी मानसिक यानि आन्तरिक शान्ति नही मिल सकती जब कि सच्चा और सदाचारी व्यक्ति भौतिक कष्ट सह कर भी आन्तरिक शान्ति का अनुभव करता है। उसके अन्तर मे एक अलौकिक सन्तुष्टि का प्रकाश अठखेलियाँ करता है। ऐसा व्यक्ति बाह्य दृष्टि से सुखी न दीखने पर भी आन्तरिक दृष्टि से सुखसम्पन्न होता है। ☐

☐ किया गया अथवा किया जाने वाला कोई भी कार्य अच्छा है या बुरा ? इस प्रश्न का कोई न कोई समाधान लेकर चलना ही होगा जीवन के क्षेत्रो मे। वैसे एक ही कार्य को कोई व्यक्ति अच्छा कहता है और कोई बुरा। तो अच्छे बुरे का मापदण्ड क्या है ? जितने व्यक्ति उतनी ही बातें। जितने मस्तिष्क उतने ही समाधान। फिर भी किसी एक निश्चित मापसहिता पर सब को एकमत होना ही होगा। और वह मापसहिता है यह कि जो कार्य जीवन को ऊँचा उठाने मे मदद करे वही अच्छा कार्य है; और जो नीचे गिराए वह बुरा कार्य है। ☐

□ फूल के खिलने और मुरझाने की वात हजारो साल वीतने के वाद आज भी मानव जीवन के हर्ष और विषाद का प्रतीक वनी हुई है।

आज धरती का इन्सान अपने घरो की शोभा वढाने के लिए फूल तो खिलाने लग गया है, । लेकिन फूलो के जैसे गुणो को नही अपना रहा है।

फूल दूल्हे के गले मे भी डाले जाते हैं, और शव पर भी चढाए जाते हैं। फूलो की माला भगवान से लेकर इन्सान और हैवान तक के गले मे पडी देखी जा सकती है। किन्तु फूल को इस से कुछ भी लेना देना नही। वह समदर्शी है, समभावी है। वह यत्र-तत्र-सर्वत्र अपनी सुगन्ध एक समान देता है। क्या मनुष्य फूलो से ऐसा कुछ समत्व कभी सीखेगा ? □

☐ मैत्री और स्वार्थ मे भला कहाँ मेल ? दोनो मे छत्तीस के अक की सी विपरीतता है। जहाँ स्वार्थ हैं वहाँ मित्रता नही, और जहाँ मित्रता है वहाँ स्वार्थ नही। स्वार्थ के आते ही मित्रता, मित्रता नही रहती, कुछ और हो जाती है—शत्रुता। जो जीवन के लिए वरदान नही, अभिशाप वन जाती है। ☐

□ विश्व के रगमच पर कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते है, जिन का जीवन सम्प्रदाय, पथ, समाज अथवा देश की सीमा-रेखाओ से परे होता है। वे किसी एक सीमा मे आवद्ध हो कर नही जीते। उन का जीवन सार्वभौमिक होता है। इस मुक्त श्रेणी मे सन्त, कवि और कलाकार आ जाते हैं। ये समस्त भूमण्डल के होते हैं। इनके लिए अपने पराये का कोई प्रश्न ही नही होता। इनके हृदय मे प्राणी मात्र के प्रति कल्याण-कामना रहा करती है। इनकी वाणी प्रतिपल सर्वोदय के गान से मुखरित रहती है। इनका कर्म अथवा व्यवहार प्रेमामृत से पूरित होता है। □

☐ इस मनुष्य के लिए, अपने को अक्ल का पुतला सिद्ध करना सहज है, किन्तु अपने को मनुष्य सिद्ध करना कठिन है। आज का मनुष्य मनुष्य नही है। सत्य, अहिंसा, शिष्टता, सहिष्णुता, स्वाभिमान रक्षा तथा आत्मोपम्य-दृष्टि मानवता के आधार स्तम्भ हैं। आज का तथाकथित सभ्य मानव इन्ही सद्गुणो की अवहेलना कर मानव से दानव वन रहा है। आज व्यक्ति समष्टि के रूप मे परिणत नही होना चाहता, अपितु समष्टि को अपने अधीनस्थ रखना चाहता है। जो उस की वहुत वडी भूल है। इस स्थिति मे उसके विकास के सभी द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं। फलत वद्ध मानसिकता का शिकार होकर मनुष्य अपने आप मे ही सिमट-सिकुड कर रह जाता है। ☐

☐ मन मे उभरने वाली इच्छाओ को दबा देने की बात अभी तक हम सुनते चले आए हैं। यही कहा जाता रहा है इच्छाओ को दमित करो। इच्छाओ को मारो, समाप्त करो। मैं कहता हूँ कि यह कोई महत्व की बात नही है। महत्वपूर्ण है जागृत होने वाली इच्छाओ पर नियन्त्रण करना, वह भी सहज रूप से। एक बार पूरी शक्ति लगा कर यदि हम अपनी इच्छाओ का दमन कर भी लेते हैं, तो आगे चल कर समय एव सयोग पाकर उनके पुन अस्तित्व मे आने की सभावना बनी रहती है। किन्तु यदि हम उन पर नियन्त्रण करने की कला सीख जाएँगे तो फिर हमे उन से कोई भी खतरा नही रह जाएगा। जो इच्छाओ को दबाता है, वह अभी निचली भूमिका पर है, और जो उन पर नियन्त्रण करना सीख लेता है वह ऊँचाईयो का मार्ग पा जाता है। दमन एक कठोरता पूर्ण व्यवहार है, जिसकी सफलता मे सन्देह बना रहता है। नियन्त्रण एक मैत्री पूर्ण प्रवृत्ति है, जिसमे आत्मोन्नति का रहस्य छुपा है। ☐

☐ मनुष्य मनुष्य मे जिस प्रकार वेष-भूषा का, आकृति-प्रकृति का, आहार-विहार का अन्तर होता है, उसी प्रकार मन का भी अन्तर होता है। प्रत्येक मानव की सोचने-समझने की शक्ति अलग-अलग है। एक व्यक्ति घोर पाप करता है, दूसरा केवल कहता है कि पाप करुंगा, तीसरा केवल मन ही मन पाप करने की सोचता है और चौथा पहले पापकरने की सोच कर फिर उस सकल्प को तज देता है। एक अन्य व्यक्ति पाप के वारे मे कभी सोचता तक भी नही। पाप की ओर प्रवृत्त होने का उसे कभी सकल्प ही नही आता। इस प्रकार मनुष्यो का यह श्रेणी विभाग किया जा सकता है। इसी मनः स्थिति के आधार पर मानव समुदाय को विभक्त किया जा सकता है। मानव की मानस-धारा ही उसकी विभाजक रेखा है आन्तरिक दृष्टि से। ☐

□ आत्म विश्वास से भरा व्यक्ति जीवन-पथ मे आने वाले अवरोधो से रुकता नही। वह चुनौतियो को स्वीकारता ही चला जाता है। वह निर्झर के समान बह चलता है। आने वाली समस्याएँ उसको अपने पथ से विचलित नही कर सकती। वह स्वीकृत आदर्श मार्ग पर निर्बाध गति से बढता चला जाता है। मार्ग मे आने वाले शूलो को उसका आत्मविश्वास फूल बना लेता है। आत्मविश्वासी व्यक्ति नवसृजन मे विश्वास रखता है। उसकी प्रत्येक हरकत नव निर्माण की दिशा मे बढाया गया कदम होती है। उसकी सृजनात्मक शक्ति अभिव्यक्ति का नव रूप लेकर आती है। वह नरक को भी स्वर्ग मे बदल देने की सामर्थ्य अपने अन्दर मे रखता है। विश्व मे जितना भी आश्चर्यकारक नवसृजन है, वह सब आत्मविश्वास की ही देन है। इसके अभाव मे व्यक्ति एक कदम भी आगे नही बढ सकता। वह आशकाओ के भँवर जाल मे ही उलझकर रह जाता हैं। तात्पर्य यह है कि अपने आदर्शों से वे ही लोग विचलित होते हैं, जिनमे आत्म-शक्ति का अभाव होता है। आत्म-विश्वास व्यक्ति का बहुत सशक्त सम्बल है, जो उसको कुछ न कुछ कर गुजरने की अन्त प्रेरणा देता रहता है। □

□ वह जिन्दगी ही क्या जो समस्याओं और चुनौतियों से शून्य हो। यदि सभी समस्याएँ चुटकी बजाते खत्म हो जाएँ, सब चुनौतियाँ मिट जाएँ अर्थात् किसी ओर से कोई चुनौती बाकी ही न बचे, उतार चढ़ाव से सब तरह छुट्टी मिल जाए तो क्या आदमी जिन्दगी के असली लुत्फ से वंचित नहीं हो जाएगा? जिन्दगी का असली सौन्दर्य इन चढ़ावों-उतरावों में ही तो समाया हुआ है। समस्याओं से जूझने से ही तो व्यक्ति जीवट का आदमी बनता है। चुनौतियों को स्वीकार करने में ही जीवन का आनन्द है। यहीं से अभय की साधना प्रारम्भ होती है। सुख-समृद्धि की मंजिल मिलती है। आनन्द का कल-कल, छल-छल करता निर्झर यहीं से तो प्रस्फुटित होता है। समस्याएँ और चुनौतियाँ जीवन्तता की निशानी हैं। जिन्हें स्वीकार कर जीवन में सरसता-रम्यता होता है। □

☐ खतरो से बच-बच कर चलने वाला व्यक्ति कभी उन्नति कर सकेगा, इसमे सन्देह है। उन्नति करने के लिए खतरो से खेलना सीखिए। खतरे आगे बढने की प्रेरणा देते हैं। हर नए और बडे कदम के लिए खतरे का बोझ तो सिर पर उठाना ही पडता है। खतरे के डर से घर मे दुबक कर बैठे रहने पर भी खतरा मुण्डेरो पर चढकर सिर पर बोलने लगता है। इसलिए सकट और सफलता का सही मूल्याकन कर लेते के बाद हिचकिचाने से खदक मे गिर जाने का भय बना रहता है। जबकि साहसी व्यक्ति एक ही छलाग मे खाई को पार कर जाते हैं। खतरो से खेलना जीवन मे साहस का सचार करता है। साहसी व्यक्ति के अन्दर ही अभय एव अकम्प की भावना पैदा होती है। अभय का साधक व्यक्ति अपने लक्ष्य बिन्दु को बडी ही शीघ्रता से प्राप्त कर लेता है। खतरो एव तूफानो से भयभीत होने की आवश्यकता नही। उनको नियन्त्रण मे लेना सीखिए। वीर बनिए, महावीर बनिए। ☐

□ मन कीशक्ति वडी प्रवल शक्ति है। मन मानव व्यक्तित्व का वह ज्ञानात्मक रूप है, जिससे उसके सभी कर्म सचालित होते हैं। मन मे मनन करने की क्षमता होने के कारण ही मानव को चिन्तनशील प्राणी कहा जाता है। मन की दृढ शक्ति के द्वारा मनुष्य वडे-वडे अद्‌भुत आश्चर्यजनक कार्य कर डालता है । जव तक मनुष्य का मनोवल अक्षुण्ण रहता है, तथा उसकी सकल्प शक्ति नही टूटती, तव तक कठिन से कठिन कार्य से भी मानव पराजित नही होता। कोई भी अवरोध उसे लक्ष्य प्राप्ति से नही रोक सकता। मन के टूटने पर वड़े-वडे सकल्प धराशायी हो जाते हैं। मन ही व्यक्ति की सफलता, असफलता का मूलाधार है । जिस कर्म के प्रति व्यक्ति का रुझान होता है, वह उस कार्य को अनेक कष्ट अनुभव करता हुआ भी कर गुजरता है। एक पर्वतारोही इसी मन के रुझान के कारण भीषण हिमाच्छन्न पर्वतो पर हँसते मुस्कुराते चढ जाता है, मार्ग की अनेकानेक कठिन-कठोर वाधाओ को पार करता हुआ। यह सव मनोवल का ही चमत्कार है।

मनोवल वस्तुत सफलता की कुञ्जी है। जिस काम के प्रति मनुष्य के मन मे अनुराग नही, अभिरुचि नही, वह काम न तो मनुष्य ठीक तरह से कर पाता है, और न उस काम के समय मे उसमे कोई स्फूर्ति ही होती है। उत्साह की वात तो वहुत दूर की वात है। □

☐ अपने को ज्ञानी अथवा पूर्ण पण्डित समझ लेने का भ्रम पूर्ण अभिमान साधक को साधना-पथ से गिरा देता है। आत्मिक दृष्टि से उसे नष्ट कर डालता है। अत साधक के लिए उचित है कि वह अपने को उत्तरोत्तर पूर्णता तक पहुंचाने की चेष्टा करे। मिथ्या अभिमान के दल-दल से बच कर निरभिमानी व्यक्ति ही कुछ प्राप्त कर सकता है। और जो सदैव कुछ न कुछ ग्रहण करते रहने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियो के द्वार उन्मुक्त रखता है, वही कुछ सीख सकता है। ☐

☐ अत्यधिक आरामतलबी मनुष्य को स्थितिवादी बना डालती है। क्योकि भविष्य के लिए उसकी कर्तृत्व शक्ति हीन से हीनतर होती जाती है। पुरुषार्थ प्रसुप्ति मे पहुँचता चला जाता है। इसीकारण उसकी निगाहें पीछे की ओर देखने की आदी हो जाती हैं।

सुधार हमेशा सशक्त बोधपूर्ण कर्तृत्व की अपेक्षा रखता है। यहाँ आराम हराम होता है। सुधारवादी सदा आगे की ओर ही देखता है। वह भविष्य मे से ही सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का निर्माण करता है। नए-नए मार्गों का अन्वेषण करता है। नई-नई उपलब्धियो का प्राप्तकर्ता होता है। वह हर दिन नूतन, नित्य नूतन से परिचित रहता है, जबकि स्थितिवादी नूतन से सर्वथा अपरिचित हो अतीत के ही स्वर्णिम व्यामोह मे उलझा रहता है। वह सत्य के नए द्वार उद्घाटित करने मे सर्वथा असमर्थ रहता है। जब सत्यान्वेषण की दिशा मे प्रयत्न ही नही होगा तो नवीन उपलब्धियाँ कैसे और कहाँ से प्राप्त हो सकेंगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। ☐

☐ मनुष्य एक भावनाशील प्राणी है। भावात्मक रूप से प्रत्येक मानव एक दूसरे से सम्बद्ध है। सेवा मानव को मानव के अति निकट ले आती है। सेवा मनुष्य को मनुष्य के प्रति कर्तव्य का सहज बोध कराती है। सेवा का अर्थ सहज अनुग्रह या दान नही है, अपितु स्वेच्छा पूर्वक लोगो के दुख दर्द को अनुभव करना है। वह भी केवल नीतिवश नही, बल्कि अतीव आवश्यक कर्तव्य समझ कर एव मानव परिवार के हर व्यक्ति के प्रति सहज कर्तव्य बुद्धि से प्रेरित हो कर। यही मानव मात्र को एक सूत्र मे आबद्ध करने वाला भावात्मक रूप है। ☐

□ अखण्डता की शक्ति महान है। पुष्प लता के बीज की अखण्डता फूल खिलाती है। गेहूं चने की अखण्डता पृथ्वी से सोना पैदा करती है फसल के रूप मे। अखण्ड गेहूं या चना उपजाऊ भूमि मे पडकर खेतो को हरियाली से भर देता है। जन-जन के उपयोग मे आकर ससार को तृप्ति देता है। यदि उस गेहूं या चने को तोड कर दो भागो मे बांट दिया जाए तो क्या वह उगने की शक्ति अपने मे रख सकेगा? नही, ऐसी अवस्था मे मिट्टी पानी उसे गला कर समाप्त कर डालते हैं। उसकी अखण्डता ही उसकी उत्पत्ति का मुख्य कारण है। यही स्थिति जीवन की भी है। विश्व को तृप्ति एव आनन्द बांटने के लिए जीवन मे भी ज्ञान और कर्म की अखण्डता अपेक्षित है। ज्ञान और कर्म के बीज जब अखण्ड रूप मे एक रस होकर जीवन की भूमि मे बोये जाएँगे, तब जीवन का क्षेत्र अनेकानेक सद्गुणो की फसल से हरा-भरा हो लहलहा उठेगा। इसप्रकार अखण्डता की शक्ति जीवन को आनन्द से भर देगी। □

☐ निरन्तर की असफलताओ का सामना करते करते कभी कभी आदमी के मन मे गहरी निराशा घर कर लेती है। वह किसी भी काम मे दिलचस्पी नही लेता फिर, इसी डर से कि कही उसमे भी असफलता ही उसके हाथ न लगे। जीवन ही उसके लिए व्यर्थ हो जाता है उत्साह भग की स्थिति मे पहुँचकर। फिर किसी भी चीज मे उसके लिए आकर्षण नही रह जाता। उसका मन ऊब से भर उठता है। ऊब का अर्थ ही है अभिरुचि का अभाव, उम्मीदो की मौत।

सफलता के आकाक्षी मानव को समझना चाहिए कि प्रत्येक असफलता मनुष्य के साहस को एक चुनौती है। चुनौती का दृढता पूर्वक आत्मविश्वास के साथ सामना कीजिए, पीठ न दिखाइए। हर मिलने वाली असफलता को भावी सीढी बनाइए, आगे बढने के लिए फिर आशा का दीप अपने आप मन मे जल उठेगा। ऊब की अधियारी फट जाएगी, सफलता का नव विहान आपका स्वागत करेगा। फिर आपका जीवन खुशियो से भर उठेगा। ☐

□ डूवने की आशाका गहरे पानी मे तैरने वालो के प्रति ही की जा सकती है। जो किनारे पर खड़े रहने वाले हैं वे कभी नही डूवते, यह वात शत प्रतिशत सत्य है। यह तथ्य भी स्पष्ट है कि किनारे पर खडे रहने वाले लोग, कभी तैरना भी तो नही सीख सकते। तैरना सीखने के लिए गहरे पानी मे उतरना ही होगा।

यही वात मनुष्य के जीवन के सम्वन्ध मे भी है। जव तक मनुष्य सघर्षों एव सकटो के गहरे पानी मे उतरने से डरता रहेगा, तव तक वह जीवन की उदात्त उपलब्धियो से वचित ही रहेगा। उसके लिए प्रगति के द्वार वन्द हो जाएँगे। डूव जाने के भय को मन मे निकाल दीजिए, तैरने की वलवती भावना को लेकर ही निर्भयता के साथ पानी मे उतर जाइए। वस, फिर सफलताओ की मुक्ता-मणियो से आपकी झोली भरपूर होगी। □

□ मनुष्य जब तक बाहर मे अपने आप को विखेरे रखेगा तब तक तत्व से दूर ही रह जाएगा। उसके मन एव इन्द्रियो का व्यापार जब तक बहिर्मुखी रहेगा तब तक सम्बोधि की प्राप्ति असम्भव है। अपने को सब ओर से समेट-सहेज कर जब मनुष्य अपने मे ही पूर्ण तन्मयता-पूर्वक डूब जाता है अद्वैतभाव से, तो अमृत के स्रोत उसके अन्दर से ही फूट पडते हैं। फिर मानव का तन-मन अमृत-रस से सरावोर हो उठता है। निगूढतम रहस्यो पर से आवरण हटता हुआ चला जाता है ऐसी अवस्था मे। रहस्यो का भेदन करते हुए फिर आत्मा स्व स्थित होकर अपने लक्ष्य को प्राप्न कर लेता हैं □

☐ मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। संहकार और समन्वय की भावना इस की मूलगत वृत्ति-प्रवृत्ति है। एक दूसरे का पारस्परिक सहयोग ले-देकर ही जीवन-व्यापार चलाया जा सकता है। एकान्तिक जीवन व्यतीत करना, सामान्य मनुष्य के वस की वात नही। उसे किसी न किसी रूप मे सामाजिकता मे स्वय को वाँधना ही होगा। समन्वय का सम्वल लेकर चलना ही होगा। नही तो व्यक्ति जीवन मे पिछड़ जाएगा। सुई और धागे मे समन्वय होता है, तभी फटे वस्त्रो को सीने का कार्य हो सकता है। सूई धागे की सार्थकता भी तभी है, जव दोनो मिलकर परस्पर सहकार करें। आप अनुभव करते हैं कि अकेली सूई जोडने का कार्य नही कर सकती और न ही अकेला धागा जोडने मे समर्थ हो सकता है। इसलिए सहकार एव समन्वय की भावना का उपयोग मानव समुदाय के लिए अत्यन्त हितावह है। इसका प्रयोगात्मक रूप जीवन को अखण्ड प्रकाश एवं अमित आनन्द से भर देता है। ☐

☐ मनुष्य के पास मस्तिष्क है, विचार है, बुद्धि है और है अपना स्वतन्त्र चिन्तन। पीछे से चली आ रही हर परम्परा को वह आँखे बन्द करके स्वीकारता ही चले, यह उसके स्वतन्त्र चिन्तन एव बुद्धि का अपमान है। हमारे लिए आवश्यक नही कि हम पुरानी पीढी का चश्मा लगाएँ ही लगाएँ। हम अपनी दृष्टि से देखें कि क्या सही है और क्या गलत है ?

साथ ही यह भी ध्यान रखिए कि बिना किसी नई सिद्धान्त-स्थापना की दृष्टि के कोरा अस्वीकार पलायन है। पलायनवादी के पास कुछ कर पाने या कुछ नया देने की क्षमता कतई नही होती। इसलिए मनुष्य अपनी बुद्धि एव अपने स्वतन्त्र चिन्तन का विकास करे नये सिद्धान्त स्थापना की दृष्टि को ध्यान मे रख कर। नये के व्यामोह मे सब कुछ नकारता ही न चला जाए। ☐

□ कुछ वलिदान ऐसे भी होते हैं -जिन्हें जमाने की स्थूल निगाहे नही देख पाती, परन्तु उनके परिणाम से हर कोई परिचित रहता है। दीवार हमेशा नीव के पत्थरो पर ही खडी की जाती है, ऐसा ससार का-नियम है। लेकिन नीव के उन पत्थरो को कोई देख नही पाता। दीवार खडी हो जाने के पश्चात् दीवार हमे दीखती है, पर नीव के वलिदानी ककड-पत्थरो को हम कव देख या जान पाते हैं? और सच तो यह हैं कि वलिदानी ककड-पत्थरो की यह कामना भी नही होती। जहाँ अपने आप को प्रदर्शित करने का भाव आया कि वलिदान का रग फीका पडना प्रारम्भ हो जाता है। वलिदान मूक कर्तव्य पालन माँगता है —प्रसिद्धि से दूर, अति दूर रह कर। □

☐ यह जन मानस की एक दुर्बल मनोवृत्ति है कि वह वर्तमान से सदा असन्तुष्ट ही रहता है। भूतकाल को अच्छा समझने की उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसी कारण वर्तमान का लाभ उसे ठीक तरह से नही मिल पाता, और उसके दोष वर्तमान के सिर पर लद जाते हैं।

यहाँ मनुष्य यह भूल जाता है कि अतीत उसके हाथ से निकल चुका है, भविष्य उससे अभी दूर है, वर्तमान उसके अपने हाथ मे हैं। जैसा उसको बनाना चाहे वह बना सकता है। निर्माण या ध्वस दोनो मानव की अपनी ही मनोवृत्ति पर निर्भर हैं। वर्तमान का ही अधिक महत्व है जीवन मे। अतीत प्रेरणा स्रोत बन सकता हैं। भविष्य स्वर्णिम आदर्श एव कल्पनाओ का ताना-बाना हो सकता है। किन्तु वर्तमान एक ऐसा यथार्थ है, जो भोगना होता है। जहाँ खट्टे-मीठे अनुभवो के फल लगते हैं। जो जीवन की प्रगति के लिए अतीव महत्वपूर्ण है। वर्तमान मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण क्रीडा स्थली है। जहाँ बनाव और बिगाड दोनो ही हैं। ☐

☐ विसर्जन मे ही नव सृजन के तत्व निहित है। नव सृजन के लिए विसर्जन आवश्यक है। हर नव निर्माण पूर्व का विसर्जन चाहता है। जरा चिन्तन मे गहरे उतरिए, और विचार कीजिए, एक वीज जब तक अपना स्वय का अस्तित्व वनाए हुए है तव तक वृक्ष के निर्माण की कल्पना नही की जा सकती। वृक्ष कव अस्तित्व मे आता है? जव वीज स्वय का विसर्जन कर देता है पूर्णतया। वीज का विसर्जन हुआ कि वृक्ष का सृजन प्रारम्भ हो जाता हैं। शनै शनै वह अपना विराट् रूप लेकर हमारे सामने आ जाता है। इस प्रकार विसर्जन सृजन के द्वार खोल देता है। विसर्जन से घवराइए नही। यह सृजन की पूर्व प्रक्रिया मात्र ही तो है, इसका स्वागत कीजिए। निर्माण के इस प्रारूप को नकारने मे काम नही चलेगा। स्वके अस्तित्व को चिरस्थायी रखने के लिए एक वार तो अस्तित्व को विसर्जित करना ही होगा। वीज को वृक्ष वनने के लिए प्रतीक्षा करनी ही होगी। हो सकता है यह प्रतीक्षा कुछ लम्वी भी हो, परन्तु धीरज को छोडिए नही। विसर्जन के वाद सृजन अवश्यभावी है। दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनो एक ही छडी के दो छोर हैं। ☐

☐ किसी भी लक्ष्य अथवा मजिल तक पहुँचने का माग अवश्य ही होता है। मजिल है तो मार्ग भी है। सिद्धि है तो साधन भी हैं। दूरी है तो उसे तय करने के रास्ते भी हैं।

परमात्मा या परमानन्द है तो उस तक पहुँचने का मार्ग भी अवश्य ही है। धर्म ईश्वरत्व एव अनन्त आनन्द के पास तक जाने वाला एक रास्ता है। धर्म मानव की अध्यात्मिक चेतना को जागृत करने का सर्वोत्तम साधन है। विनाश, दुराग्रह, आतक और दुराचार से त्रस्त मानवता को बचाने का एक मात्र साधन आध्यात्मिक प्रगति है। ☐

☐ सुख और दु ख जीवन मे प्रवाहित होने वाली दो धाराएँ हैं। सुख-साधनो के सयोग से सुख, और उनके वियोग से दु ख होता है। ससारी सुख अनित्य एव क्षण भगुर है। इसमे स्थायित्व की गु जाइश नही। नश्वर पदार्थों से उत्पन्न सुख कभी अनश्वर या स्थायी नही हो सकता। जव तक अन्तर्मन से वासनाओ का अन्त नही होता, तव तक सच्चे सुख अथवा परमानन्द की प्राप्ति नही हो सकती। आनन्द की अनुभूति वाणी से नही कही जा सकती सम्पूर्ण रूप से। वह तो गूँगे का गुड है एक तरह से। जो अभिव्यक्ति से परे की वात है। आनन्द का साधन सत्सग है, सद्शास्त्रो का स्वध्याय है, मनन-चिन्तन है। इसी मार्ग से होकर अनश्वर सुखोपलब्धि तक पहुँचा जाता है। दु खो की धारा को सदा-सदा के लिए शोपित किया जा सकता है। ☐

☐ मनुष्य प्रारम्भ से ही सग्रह वृत्ति का प्राणी रहा है। यह सग्रह की भावना ही भविष्य मे चलकर अनेकानेक असमानताओ को जन्म दे डालती है। फलत मनुष्य सघर्ष मे उतर पडता है। सघर्ष मे उतरते ही अनेक विषम स्थितिया उसे चारो ओर से घेर लेती हैं। अभाव-अभियोगो का एक ताँता सा लग जाता है। इसलिए विचारक लोग मनुष्य की इस सग्रह वृत्ति को तोडने का प्रयत्न करते ही चले आ रहे हैं, और कर रहे है। अभी तक यह नियत्रण मे नही आ पाई है। परिणाम स्वरूप वर्ग सघर्ष नए-नए रूपो मे जन्म ले रहे हैं। मानवता मूलक सिद्धान्तो से मनुष्य दूर हटता चला जा रहा है। परस्पर मे अविश्वास की भावना पैदा होती जा रही है। जो कि सग्रह वृत्ति की प्रथम सन्तान के रूप मे है। यह पारस्परिक अविश्वास अनेक युद्धो का रूप धारण कर चुका है। और जब भी पारस्परिक विक्षोभ, द्वन्द्व, सघर्ष बढते हैं, इन का मूल पोषक तत्त्व यह अविश्वास ही होता है। इसलिए मनुष्य को अपनी सग्रह वृत्ति पर नियन्त्रण करना है, जो अनेक सघर्षों की जन्मदात्री है। जब तक मनुष्य की यह घातक वृत्ति नही टूटेगी, तव तक शान्ति का पथ धूमिल ही बना रहेगा। उस पर अविश्वास का कोहरा छाया ही रहेगा। ☐

☐ मनुष्य सुन्दरता का उपासक रहा है। उसने सौन्दर्य को अपना उपास्य माना है, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यो न हो। मनुष्य की इस सौन्दर्य पिपासा ने अनेक सुन्दर फुलवारियो का सृजन किया, अनेक सौन्दर्यपूर्ण ताल-सरोवरो का निर्माण किया। इस प्रकार मानव ने प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा को अपने अत्यन्त निकट लाने का प्रयास किया। आज के इस वैज्ञानिक युग ने तो मनुष्य की इस सौन्दर्य लिप्सा की तृप्ति के लिए अनेक प्रकार की प्रसाधन सामिग्री का निर्माण किया। मनुष्य ने अपने असुन्दर शरीर को इन अत्याधुनिक प्रसाधनो से सजाने-सवारने का प्रयत्न किया। फलत इसकी खून-पसीने की गाढी कमाई इन प्रसाधनो की भेंट होती चली गई। खेद है कि मनुष्य ने ऊपरी सौन्दर्य की ओर तो इतना अधिक ध्यान दिया, किन्तु अपने गुणात्मक सौन्दर्य को सर्वथा ही भूल गया। यदि मनुष्य अपने अन्दर मानवता मूलक सुन्दर गुणों का सग्रह करे तो तन की असुन्दरता अपने आप मिट जाएगी। मन के सौन्दर्य के सामने तन का असौन्दर्य सदा-सदा के लिए छुप जाता है। उसका कोई मूल्य-महत्त्व नही रहता फिर। ☐

☐ कहावत है "जो बीत गई सो बात गई"। जो बात हो गई, वह हो गई। अब उसकी चिन्ता मे उलझे रहने से सिवाए परेशानी के और क्या होने वाला है। अतीत को वापिस नही लौटाया जा सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह समागत समस्या को उसके वर्तमान रूप मे ही लेकर उचित समाधान करे। यदि वर्तमान समस्याओ को अतीत के चश्मे से देखोगे तो समस्याएँ ओर भी उलझती चली जाएँगी बजाए सुलझने के। हमे वर्तमान के सन्दर्भ मे समस्याओ का समाधान खोजना है, यही हमारे लिए अधिक उपयोगी भी होगा। नदी के प्रवाह को वापिस लौटाने के प्रयास मे मनुष्य अनेक उलझनो मे उलझकर रह जाता है। जब कि यह कार्य अशक्य है। यदि किसी प्रकार से नदी के प्रवाह को वापिस लौटा भी लिया गया तो उसका उपयोय क्या होगा? उस अथाह जल राशि को कहाँ और किस प्रकार से समोया जा सकेगा? यह भी एक बहुत बडा सिर दर्द बन जाएगा। जब कि वह अपने प्रवाह मे बहता हुआ समुद्र मे जा समाता है। इसलिए अपने चिन्तन प्रवाह को वापिस लौटाने के प्रयत्न मे अपनी ऊर्जा को व्यर्थ मे नष्ट मत कीजिए। अतीत के स्वर्णिम व्यामोह को छोडिए। वर्तमान मे ही जीने का प्रयत्न कीजिए। वर्तमान को श्रेष्ठ एव सुन्दरतम बनाने मे अपनी ऊर्जा का समुचित उपयोग कीजिए मुक्त हृदय से। फिर आपका भविष्य स्वय सुन्दरता पूर्ण होगा ऐसा विश्वास रखिए। भविष्य मे जो कुछ भी उपलब्ध होगा उसका बहुत कुछ श्रेय आप के इस वर्तमान कर्म प्रधान अनुभव को ही जाएगा। ☐

☐ धूप पौधे के विकास के लिए आवश्यक है, किन्तु अधिक तेज धूप, और निरन्तर की धूप पौधे को झुलसा भी देती हैं।

पौधे के विकास के लिए पानी भी अत्यावश्यक है, किन्तु आवश्यकता से अधिक और निरन्तर का पानी पौधे को गला भी डालता है। उसकी जडो को समाप्त कर देता है।

इसी प्रकार बालक भी एक नाजुक पौधा है। उसके विकास के लिए स्नेह का जल और अनुशासन की धूप दोनो ही आवश्यक हैं, किन्तु दोनो की अति से बालक को बचाए रखना जरूरी है। सही अनुपात का प्यार और अनुशासन उसके मन-मस्तिष्क के विकास मे अत्यन्त सहायक होता है। किन्तु इनका आधिक्य बच्चे के विकास को अवरुद्ध कर डालता है। प्यार और अनुशासन सही-सही अनुपात मे बच्चे को मिलने चाहिए। दोनो ही अतियो से उसे बचाना आवश्यक है। ☐

☐ चलते-चलते मनुष्य के जीवन मे कभी-कभी ऐसे प्रसग भी आ जाते है, जब उसको सहारे की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। ठीक है यदि पांव दुर्बल पड गए है तो वैसाखी का सहारा अवश्य लीजिए और सहारा लेना ही होगा। वह द्रुत से नही तो धीमे ही आपको गतिमान रहने मे अवश्य ही सहायक होगी। किन्तु ध्यान रखिए, वैसाखी वैसाखी है, वह पाव नही हैं। तीन काल मे भी वह पांव का स्थान नही ले सकती। लम्बी मजिल को तय करने के लिए सशक्त कदमो की ही आवश्यकता होती है। सहारो का आधार कुछ समय के लिए ही काम दे सकता है। ☐

☐ धूप पौधे के विकास के लिए आवश्यक है, किन्तु अधिक तेज धूप, और निरन्तर की धूप पौधे को झुलसा भी देती हैं।

पौधे के विकास के लिए पानी भी अत्यावश्यक है, किन्तु आवश्यकता से अधिक और निरन्तर का पानी पौधे को गला भी डालता है। उसकी जडो को समाप्त कर देता है।

इसी प्रकार बालक भी एक नाजुक पौधा है। उसके विकास के लिए स्नेह का जल और अनुशासन की धूप दोनो ही आवश्यक हैं, किन्तु दोनो की अति से बालक को बचाए रखना जरूरी है। सही अनुपात का प्यार और अनुशासन उसके मन-मस्तिष्क के विकास मे अत्यन्त सहायक होता है। किन्तु इनका आधिक्य बच्चे के विकास को अवरुद्ध कर डालता है। प्यार और अनुशासन सही-सही अनुपात मे बच्चे को मिलने चाहिए। दोनो ही अतियो से उसे बचाना आवश्यक है। ☐

□ स्वतन्त्रता मनुष्य की सबसे बडी और सबसे सच्ची कामना है। वह किसी भी स्थिति मे परतन्त्रता को स्वीकार करना नही चाहता। स्वातन्त्र्य प्रियता मानव का स्वभाव है। अतः किसी को किसी भी प्रकार से परतन्त्र रखना पाप हैं, मानवता से परे की बात है। परतन्त्रता विचारो और परम्पराओ की भी होती है। अपने विचारो को प्रकट करने का मानव मात्र का अधिकार है, किन्तु अपने विचारो को बलात् दूसरो पर थोप कर उन्हे अपना विचारानुगामी बनाना यह वैचारिक परतन्त्रता है। यहाँ मनुष्य का अपना मुक्त चिन्तन किसी दूसरे के द्वारा निर्मित सीमा-रेखाओ मे आबद्ध हो जाता है। उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता दब जाती है बलात् थोपे गए विचारो द्वारा। अधिकाश यह देखने मे आता हैं कि मनुष्य एक बधे बधाए विचार-जगत मे ही घूमता रहता है। उसकी स्वय की अनुभूतियाँ प्रसुप्त कर दी जाती हैं। वह परम्परागत चलते आए विचारो को अपने ही विचार समझने लग जाता हैं। फलत नव चिन्तन से हम महरूम रह जाते हैं। यदि कोई चिन्तन की स्वतन्त्रता को स्वीकारता भी है तो उसे अनेकानेक विद्रोही एव नास्तिक आदि टाईटिलो से विभूषित कर दिया जाता हैं, तथा कथित विचारक कहे जाने वालो द्वारा। मनुष्य की वैचारिक स्वतन्त्रता का हनन हिंसा की श्रेणी मे आ जाता है। हमे यह अधिकार नही है कि हम दूसरे व्यक्ति को अपनी इच्छा या विचारो का बलात् दास बनाएँ। □

☐ समस्या बस एक ही है, और वह हमारे जीवन के प्रत्येक अग मे व्याप्त है। वह समस्या है अपनी पहचान की। मनुष्य इधर उधर के ससार को तो जानने का प्रयत्न करता है, और उसके प्रति जिज्ञासा भी रखता है, परन्तु इस पहचान के प्रयत्न मे वह स्वय को विस्मृत कर देता है। वह भूल जाता है कि वह कौन है और उसे क्या होना चाहिए ? इसप्रकार अपने से ही पहचान करने मे परहेज क्यो ? यह एक विचारणीय बात है। हम भूल रहे हैं कि इस समय हम कहाँ है और किस मजिल तक पहुँचना चाहते है ? जब तक ये दो विन्दु स्पष्ट न हो, तब तक प्रगति की वास्तविक दिशा का बोध कराने वाली सीधी रेखा, सीधी राह नही कही जा सकती। इसलिए स्वय के प्रति आस्थावान रह कर, स्वय को जानते-पहचानते, जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना है। जब जीवन की दिशा स्पष्ट हो जाएगी तो समस्याएँ स्वयमेव ही सुलझती चली जाएँगी। उनका समाधान स्वय से ही मिलता चला जाएगा। अत स्वय को जानिए, अपनी मजिल अथवा लक्ष्य को पहचाने का प्रयत्न कीजिए आत्मज्ञान के प्रकाश मे। ☐

□ वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति के युग मे मनुष्य पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से मुक्त होकर चन्द्रमा तक हो आया है और मगल ग्रह तक जाने की योजना-पूर्ति के कार्यक्रम मे लगा हुआ है।

किन्तु खेद है कि वह अपनी जडता के गुरूत्वाकर्षण से बधकर पडौस के आदमी तक नही पहुंच पाता। नही देख पाता कि वह किन परिस्थितियो मे अपना जीवन यापन कर रहा है। उसको भी तो जीने का हक है। वह भी विकास का इच्छुक है।

आज का मानव इतना बुद्धिमान है, कि वह विज्ञान के तीव्र गति वाले घोड़े पर आरूढ होकर मानवेतर प्रकृति को नियन्त्रित करने मे जी-जान से जुटा है। कुछ अशो मे उसको नियन्त्रित कर भी लिया है।

किन्तु कहना पडता है कि बुद्धिमान होते हुए भी वह मूढ है, अज्ञ है। क्योकि वह स्वय की प्रकृति को नियन्त्रित करने मे असफल रह जाता है। वह आत्म नियन्त्रण नही कर पाता। दूसरो के जीवन का लेखा-जोखा लगा लेने से हमे कुछ भी मिलने वाला नही। हमे अपने जीवन का सही लेखा-जोखा करना होगा जडता के गुरूत्वाकर्षण से तनिक परे हट कर। तभी सम्बोधि प्राप्त की जा सकती है। □

☐ लगता है आज का मनुष्य शान्ति की राह से भटक गया हैं। इसी भटकाव मे कभी वह विज्ञान की शरण लेता है, कभी वह सब कुछ समाप्त कर केवल शून्य वाद को अपनाने दौडता है। फिर भी वह शान्ति से दूर ही होता चला जा रहा है। उसकी त्रासद परिस्थितियाँ समाप्त होने मे ही नही आ रही हैं। दल बन्दियो मे फसा धर्म भी आज उसे त्राण देने मे समर्थ नही है। आज मानवता भयकर रूप से पीडित है।

पीडित मानवता को सुख और शान्ति प्रदान करने के लिए आज धर्म और विज्ञान दोनो की ही आवश्यकता है। जहाँ विज्ञान मानव-समुदाय के लिए प्रकृति से भौतिक सुख-समृद्धि के साधन जुटाता है, वहाँ धर्म आध्यात्मिक सुख एव परिपूर्णता प्रदान करता है। इसलिए दोनो का समन्वय आवश्यक है। विज्ञान और धर्म विरोधी नही हैं। विज्ञान भी मनुष्य के कल्याण के लिए कार्य करता है। दल-बन्दियो के दलदल से निकालकर धर्म की विशुद्ध आत्मा को समझना होगा। विशुद्ध धर्म और विज्ञान का समन्वयात्मक रूप मानव जीवन के लिए कल्याणकारी होगा, मनुष्य को शान्ति देने वाला होगा। ☐

[illegible]

[illegible]

☐ प्रेम कोई बाहर से अन्दर मे डाल देने जैसी वस्तु नही है। वह तो अन्दर मे ही है। मात्र आवश्यकता है उसे अनावृत्त करने की। प्रस्फुटित कर बाहर लाने की। मूर्तिकार पत्थर को तोडता है, हथौडे छैनी से छीलता है, इस प्रक्रिया से नया क्या बनाता है वह ? मूर्ति पत्थर के अन्दर मे छुपी हुई है। मात्र पत्थर को काट-छाँट कर, सही तरीके एव प्रक्रिया से तराश कर, उसे बाहर लाने का ही प्रश्न है। कुआँ खोदने की प्रक्रिया नये जल का निर्माण नही करती। वह तो धरती के गर्भ मे अजस्र रूप से प्रवहमान है ही। केवल धरती की परतो को तोड कर उसे बाहर लाने की आवश्यकना है। इसी प्रकार से ईश्वरत्व कहिए, परमात्म तत्व कहिए यह भी मानव के अन्तर मे ही छुपा हुआ है' केवल आवश्यकता है इसके प्रकटीकरण की। यह ईश्वरीः तत्व अथवा परमात्म तत्व ही तो प्रेम है, जो मानव कं महामानव के राजपथ पर ले आता है। यह वह राजपथ है जं भुक्ति से मुक्ति की ओर जाता है। ☐

□ सुनते आये है कि पारस से लोहे का सस्पर्श होते ही लोहा सोने मे परिवर्तित हो जाता है। लेकिन आज तक का इतिहास बतलाता है कि एक पारस दूसरे पारस को उत्पन्न नही कर सका। हजारो लाखो मण लोहे को सोना बनाने की सामर्थ्य उसमे है अवश्य, परन्तु अपने समान दूसरा पारस बनाने मे वह नितान्त असमर्थ ही रहा है और रहेगा भी। इसीप्रकार फुलवाड़ी मे खिला फूल भी स्वय खिल सकता है, वातावरण को सुन्दर एव सुवासित कर सकता है, परन्तु दूसरा फूल नही बना सकता। अपने बराबर के पौधे के फूल को वह खिला देने मे सर्वथा असमर्थ है। लेकिन इस पृथ्वी तल पर एक पुष्प ऐसा भी है जो अपने समीपस्थ अनेकानेक पुष्पो को भी खिला देने मे सर्वथा समर्थ है। एक पारस ऐसा भी है, जो दूसरा पारस उत्पन्न कर देने मे सिद्धहस्त है। वह पुष्प और पारस है प्राणीजगत का सर्व श्रेष्ठ प्राणी मानव। मनुष्य मे ही एक ऐसी सामर्थ्य है जो अपने सम्पर्क मे आने वालो को अपने जैसा बना सकता है। स्वय सा निर्मित कर देने की शक्ति केवल मनुष्य मे ही है, जो इसकी अपनी एक बहुत बडी विशेषता है। □

□ आवश्यकता न होने पर किसी चीज का त्याग करना अथवा अह की सतुष्टि के लिए त्याग करना सच्चा त्याग नही है। मनुष्य को सग्रह का अहकार तो होता ही है, कभी कभी त्याग का भी अहकार हो जाता है। अहकार सर्वथा सर्वकाल मे वर्जित है। केवल त्याग की भावना से किया गया त्याग ही सच्चा त्याग है। सच्चा त्याग केवल आत्म-सुख तक ही सीमित नही रहता, अपितु वह दूसरो के लिए भी सुख सम्प्राप्ति का कारण बनता है। त्याग मानव समुदाय के लिए सदा से ही सुख एव आनन्द का कारण रहा है। इसलिए अहशून्य त्याग की सीमा मे आइए। यह अह शून्य त्याग ही विश्व शान्ति का सस्थापक हो सकता है। त्याग के अभाव मे मनुष्य की वृत्तियाँ एकागी, अपने तक ही सीमित बन जाती हैं। वह क्षुद्रता की सीमा रेखाओ मे बध कर रह जाता है। त्याग विराट के उद्भव का कारण बनता है, जो मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। त्याग आत्मशान्ति एव विश्व-शान्ति के लिए अनिवार्य आवश्यकता है। □

□ भारतीय संस्कृति ने मनुष्य को एक आदर्श दिया, एक विचार दिया, एक चिन्तन दिया, जो उसमे रहे हुए दुर्गुणो को निकाल टालने की एक प्रक्रिया है, एक साधन है। है वह बहुत सामान्य सी बात, परन्तु परिणाम उसका बडा ही सुन्दर एव उत्कर्ष से परिपूर्ण है। वह विचार है आत्मनिरीक्षण का। वह चिन्तन है स्वदोष दर्शन का। अधिकांशतः मानव-जगत मे दूसरे के दोष देखने की गन्दी वृत्ति पाई जाती है। भारतीय चिन्तको ने इस वृत्ति को उखाड फैंकने के लिए नही कहा। उन्होंने तो केवल इसकी दिशा परिवर्तन करने की ही बात कही। इस दोषदर्शन की वृत्ति को अपने अन्तर मे झाकने दो। बाहर अन्य किसी की ओर मत देखो। स्वय मे रही दुर्बलताओ को ही देखो, समझो और उन्हे दूर करने का प्रयत्न करो। यही से आत्मालोचन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। जो जीवन को मांज-धोकर निखार देती है, उसे स्वच्छ एव शुद्ध स्थिति की ओर ले जाती है □

☐ धर्म मनुष्य-मनुष्य के मध्य कोई विभाजक रेखा नही खीचता। वह तो केवल बिखराव को सहेजना ही जानता है। जो मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देने की प्रेरणा दे, वह धर्म कदापि नही हो सकता, वह धर्म के वेष मे कुछ और बेशक हो। धर्म मनुष्य मात्र मे क्या? वह तो प्राणी मात्र मे अपनत्व की भावना का बीजारोपण करता है। धर्म मनुष्य को सहिष्णु बनने की प्रेरणा देता है। वह तो शत्रु से भी प्रेममय व्यवहार करने की कल्याणकारी शिक्षा देता है। इसी विश्ववात्सल्य के प्रेरणा रूप धर्म के नाम पर हिंसा, घृणा, द्वेष, और विग्रह का बवडर खडा कर देना अज्ञानता नही तो और क्या है? हम भूल जाते हैं कि धर्म कालजयी होता है। अत जाने अनजाने उस पर किए गए किसी भी प्रकार के प्रहारो से उसका कुछ भी बिगडने वाला नही है। धर्म कोई कच्ची मिट्टी अथवा काँच का खिलौना नही है, जो जरा सी ठेस लगते ही टूट जाएगा। धर्म जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य की पूर्ति करता है। आत्मा को परमात्मा के उच्चपद तक ले जाता है। ☐

☐ विज्ञान की प्रगति ने आज मानव को अनेक सुख-साधन रूप सम्पत्तियाँ मुहैया की है। मनुष्य जितना ही वैज्ञानिक सुख साधनो मे डूबता गया उतना ही वह आत्म-सुख से वचित होता चला गया। उसके दुःख का मुख्य कारण है—आध्यात्मिक जीवन के साथ रहे हुए सम्बन्धो का टूट जाना। जब विज्ञान का धर्म से सम्बन्ध टूट जाता है, तो फिर विज्ञान विनाश की ही सृष्टि करता है। इसलिए विज्ञान पर धर्म का नियत्रण आवश्यक है। धर्म के लिए विज्ञान का प्रकाश जरूरी है।

जब विज्ञान भ्रष्ट हो जाता है तो वह युद्धो को जन्म देता है, और जब धर्म भ्रष्ट हो जाता है तो वह वर्ग, सम्प्रदाय, पथ आदि अनेक विभाजक भेदो की उत्पत्ति कर डालता है। फिर विग्रह, कलह, विद्वेष के अनेकानेक वितण्डावाद खडे हो जाते हैं। मनुष्य धर्म के नाम पर ही परस्पर मे टकरा जाता है। यह टकराहट घृणा को जन्म देती है। पारस्परिक स्नेह, सौजन्य एव सहयोग एव सहकार की पयस्विनी सूख जाती है। फिर मानव वीरानियो मे भटक जाता है। ऐसी ही घातक स्थिति वर्तमान मे उत्पन्न हो रही है। आज आवश्यकता है विज्ञान और धर्म इन दोनो के परस्पर मेल की, सहयोग एव सायुज्य की। ☐

☐ दु ख का मूल कारण वस्तु का वियोग नही, अपितु उसकी स्मृति है। जीवन मे सयोग-वियोग का खेल चला ही करता है। सयोग-वियोग अपने आप मे सुख-दुख के कारण नही है। सुख दुख का कारण है उनकी स्मृति। यह मानव-मन की दुर्बलता ही है कि वह स्मृति के भार को ढोता रहता है, और, सूख दु ख की अनुभूति करता रहता है। यह स्मृति कभी-कभी बडी अशान्त स्थितियाँ पैदा कर देती है। इस अशान्त स्थिति मे सुख पाने के लिए भूत और भविष्य के भार को एक ओर फैंक, वर्तमान मे ही जीना सीखना चाहिए। पूर्व स्मृतियाँ कभी कभी मनुष्य के चिन्तन एव कर्तव्यशक्ति को पगु वना डालती हैं। उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वह अनेक कुण्ठाओ से घिर जाता है। ठीक है, वर्तमान की अज्ञ अवस्था मे स्मृति अपरिहार्य है, परन्तु वह मन का भार न वनने पाए, वह हमारे चिन्तन अथवा विचारो को जकडने न पाए, इस वात का विशेष ध्यान रखना है। स्मृति केवल स्मृति ही रहे, वह सुख-दु ख की दात्री न वन सके। तभी हम सुख-दु ख से ऊपर उठ सकेंगे। इनसे असम्पृक्त रह सकेंगे। यही जीवन जीने की कला है। स्मृतियो से निरपेक्ष रहना सीखिए। ☐

☐ हम गरीव हैं इसलिए चरित्रहीन हैं, ऐसा नही। अपितु सचाई यह है कि हम चरित्रहीन हैं, इसलिए गरीव हैं। गरीवी का परिणाम चरित्रहीनता नही है। चरित्रहीनता का परिणाम गरीवी है। चरित्र स्वय मे एक वहुत वडी समृद्धि है, और है समृद्धि की आय का स्रोत। चरित्र व्यक्ति के अन्तर मे प्रसुप्त श्रम-देव को जागृत करता है। सकल्पो मे दृढता लाता है। कुछ करने की हिम्मत यह चरित्र ही व्यक्ति को देता है। चरित्रवान् व्यक्ति का आत्मवल वडा ही शक्तिशाली होता है। इस आत्मवल के आधार से ही व्यक्ति अनेक कठिन-कठोर ऊँचाइयो को प्राप्त कर लेता है। जिससे उसका दैन्य, उसकी गरीवी पलक झपकने भर मे ही समाप्त हो जाती है। फिर उसके जीवन मे वह सुख के स्रोत फूट पडते हैं जिनके द्वारा वह स्वय ही नही, अपितु उसका परिवार समाज तथा राष्ट्र तक आप्लावित हो उठता है। सर्वत्र अमन-चैन का सचार हो जाता है। सर्वत्र आनन्द का वातावरण प्रसारित होने लगता है। इसलिए व्यक्ति का चरित्रवान् होना अनिवार्य रूप मे आवश्यक है। ☐

□ सफलता समयसापेक्ष है। की गई किसी भी क्रिया का फल समय पर प्राप्त होता ही है। यह हम व्यवहार मे भी देखते हैं कि एक व्यक्ति मधुर फल प्राप्ति के लिए आम का पेड लगाता है, लेकिन आम उसको कब मिल पाते है? जब बीज वृक्ष बन जाता है। बीज के वृक्ष बनने तक तो प्रतीक्षा करनी ही पडेगी। अभी बीज डाला अभी फल मिल जाए ऐसा असम्भव है। यह सब कार्य समय की अपेक्षा रखते हैं। जल्दबाजी से सफलता की प्राप्ति बडी ही मुश्किल बात है।

यही बात कर्म क्षेत्र मे भी है। प्रत्येक किया गया काम सफलता तक पहुंचाने के लिए समय की अपेक्षा रखता ही है। इसीलिए फल की आकाक्षा के परित्याग की बात हमारे पूर्व ऋषियो ने की है। वे कहते रहे हैं कर्म करो, परन्तु फल की आकाक्षा मत रखो। निष्काम कर्म ही विकास की पहली शर्त है। निष्काम कर्म की भावना से ही निस्वार्थवृत्ति का प्रादुर्भाव होता है। जब निस्वार्थ भावना व्यक्ति के अन्दर आ जाती है तो परिवार, समाज और राष्ट्र की शान्ति एव प्रगति अवश्यभावी है। □

□ आवश्यकताओ को बढाते जाएँगे तो उनका कही अन्त नही होगा। वे तो अन्तरिक्ष के समान अनन्त हैं। एक आवश्यकता की पूर्ति दूसरी को जन्म दे जाती है। इस प्रकार से यह सिलसिला चलता ही रहता है अनवरत रूप से, जब तक कि इस पर सन्तोप अथवा त्याग का नियत्रण नही होता। अत्यधिक आवश्यकताओ से आर्थिक सकट, और इनकी आपूर्ति न हो पाने के कारण मानसिक तनाव पैदा होगा। जैसे भी जिस भी साधन से पैसा इकट्ठा करना, यह तृष्णा का विपचक्र जीवन को नष्ट कर देता है। अधिक भोग अधिक उत्पादन यह पश्चिम की सस्कृति है। भारतीय सस्कृति का स्वर है अधिक उत्पादन एव अधिक त्याग। यहाँ भोग को अवकाश नही। मर्यादाहीन अधिक आशा-आकांक्षाओ, तृष्णाओ को त्याग उत्पन्न ही नही होने देता। जहाँ त्यागहीन भोग है वही पर तृष्णाओ का, इच्छाओ का आधिक्य है। जहाँ त्याग है वहाँ इन पर नियत्रण है। यही सुख का साधन भी है। □

☐ मानव समाज को विघटन एव विनाश से बचाने के लिए सदा से ही अनुशासन की आवश्यकता अनुभव की गई है। मनुष्य जब भी अनुशासन तोडकर उच्छृखल हुआ तब ही उसने विनाश को निमन्त्रित किया। अनुशासनहीनता एक बहुत बडा सामाजिक एव राष्ट्रीय अपराध है।

यह सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज रचना का अभ्यस्त रहता आया है। इसलिए अनुशासन उसके सगठित विकास की विश्वसनीय कडी है। कोई सस्था इसके बिना चल नही सकती। पर अनुशासन सदैव एक सापेक्ष कदम होता है। सम्पूर्ण घटनाक्रम एव वर्तमान के तकाजो के परिप्रेक्ष्य मे उसकी साथकता आकी जानी चाहिए। केवल एक घटना विशेष के आधार पर अनुशासन की कार्यवाही कोई औचित्य नही रखती।

अनुशासित समाज एव राष्ट्र बडी से बडी समस्याओ का हल अतिशीघ्र ही निकाल लेता है। समस्याएँ उसके लिये बाधक नही बन पाती प्रगति एव उत्कर्ष के मार्ग मे। उसको मार्ग स्वय मिलता चला जाता है। अनुशासित समाज अथवा राष्ट्र मे अनेक मस्तिष्क अनेक हाथ और अनेक कदम एक ही दिशा मे जब बढते हैं तो रुकावटें उनके लिये कोई अर्थ नही रखती। ☐

☐ जिन धाराओ से समाज का अहित होता है, उन धाराओ को मोड देना भी सीखिये। आँख मीचकर केवल लकीर के फकीर वनकर चलते रहने मे कोई वहादुरी नही है। धाराओ के साथ वह जाना कोई मूल्य-महत्व नही रखता। एक निश्चित परिधि मे कोल्हू के वैल की तरह तो कोई भी चल सकता है। इससे मजिल मिलने वाली नही। कभी-कभी आवश्यकता पडने पर परिधि को तोडकर वाहर निकलना भी जरूरी हो जाता है। यह चेतन वृत्ति का परिचायक ही माना जाएगा। हो सकता है समाज का कुछ वर्ग इस को सहन न भी कर सके। फिर भी कल्याण एव मगल की भावना को दृष्टि मे रखते हुए परिधि से वाहर भी जाना चाहिए। ध्यान रहे, ऐसा भी न होने पाए कि हम परिधि तोडने की भावना के जोश मे आकर अपने होश यानि विवेक को ही भुला वैठें। कदम उठाने से पूर्व हम उसे विवेक की तुला पर अवश्य ही तोल लें। फिर उठाया गया प्रत्येक कदम हमे सफलता की ओर ही ले जाने वाला होगा और होगा अहितकारी धाराओ को मोड देने मे सशक्त एव समर्थ भी। ☐

☐ योग एक आध्यात्मिक कला है, जिससे विज्ञान-शक्ति मन, बुद्धि, प्राण और भौतिक शरीर मे अधिमानस के रास्ते उतर सकती है । इसलिए यह योग मनुष्य के पार्थिव जीवन को ऊपर उठाने वाली दिव्य इच्छा शक्ति का नीचे उतर आना ही है। अध्यात्म जीवन से अभिप्राय है—जीवन को ऐसा सुन्दर और परम-दर्शनीय बना देना कि जिससे अग-अग मे निर्मलता और पवित्रता झलकने लगे, दिव्यना जिसकी शुभ्र ज्योति का प्रतिबिम्ब ले, जीवन का कण-कण जिसके आनन्द से भरपूर हो, और प्रफुल्लता से भर उठे । जीवन को ऐसा बनाना कि वह भगवान की प्रतिमा ही प्रतीत हो। यही आध्यात्मिक जीवन है, यही दिव्य जीवन है और यही मानव शरीर का आदर्श एव लक्ष्य है । ☐

☐ व्यक्ति को जीने के लिए स्नेह चाहिए। स्नेह का चाह का तीव्रता और उसकी असफलता मनोविक्षेप को जन्म देती है। व्यक्ति अपने से बाहर की सारी दुनिया से जान-पहचान और प्रेम मांगता है। गाँव से, गली से, मकान से, पास से, पडौस से, सगे-सम्वन्धियो से, यहाँ तक कि दूर के चाँद सितारो तक से स्नेह प्राप्त की चाह बनी ही रहती है। यह एक मानव मनोवृत्ति है। परन्तु मानव की अपनी भी कोई एक सीमा होती है। अपनी सीमाओ का अवोध ही मनोविक्षेप का मूल कारण है। सम्वन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया मे व्यवित कुछ सामाजिक मूल्यो, परम्पराओ, रूढियो और स्थितियो से टकराता है। समाज तव जितना विघटन भोग रहा होता है, यह रगड उतनी ी त्रास दायक होती है। ☐

□ वर्तमान मे मनुष्य की कुछ आदत सी बन गई है कि वह बातें अधिक करता है और काम कम। उसकी जबान लम्बी हो गई है और हाथ छोटे। यह स्थिति बडी ही खतरनाक है। इसमे लक्ष्य से दूर रह जाना पडता है। मजिलें छूट जाती हैं। आदमी वाचालता के भँवर जाल में फस जाता है। कुण्ठाएँ घेर लेती हैं। विकास अवरुद्ध हो जाता है। परिणाम आता है निराशा। इस नैराश्य की स्थिति से हमे बचना है। यह तभी सम्भव है जब कि हम काम अधिक और बातें कम करेंगे। विशाल कर्म क्षेत्र हमे पुकार रहा है। नवनिर्माण हमारा आह्वान कर रहा है। हमे आगे आएँ और अपनी सृजनात्मक शक्ति का करिश्मा दिखलाएँ। युग-बोध को समझें और अपने कर्तृत्व को सही दिशा दें। समस्याओ की डोर स्वय सुलझती चली जाएगी। यही युग की माग है, जो सर्वथा सामयिक है। □

☐ अधेरी रात तथा असमय मे ऊबड-खाबड पहाडी सडको, झाडियो और वृक्षो से होकर गुजरने वाले मार्गों पर, जहाँ जगली जानवरो, सापो आदि का भय रहता है, वहाँ लालटेन अथवा टॉर्च एक विश्वसनीय साथी है। वह मार्ग दर्शन के साथ-साथ जगली जानवरो एव जीव जन्तुओ से भी सावधानी रखने के लिए प्रकाश देती है, बचने की राह बतलाती है। ठीक इसी प्रकार साधक भी एक यात्री है। उसे भी काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि जगली जानवरो और माया आदि सर्पों से भरे हुए पथ पर अज्ञान की अधकार पूर्ण रात्रि मे ज्योतिर्मय ज्ञान ही साधक का एक विश्वसनीय साथी है। जो अनेकानेक प्रकाश किरणो द्वारा उसका मार्ग आलोकित रखेगा तथा अनेक प्रकार के राग-द्वेषादि खूँख्वार भयकर हिंस्र जन्तुओ से बचने के लिए सावधान रखेगा। फिर उसकी यात्रा निर्विघ्न एव निरापद रूप से सम्पन्न हो जाएगी। अत ज्ञान, सम्यग्ज्ञान को अपना सहचर-साथी बनाइए। यही एक ऐसा सच्चा मित्र अथवा साथी है जो साधक को साध्य तक बेखटके पहुँचा देता है। जीवन के कण-कण को एक अलौकिक आलोक मे भर देता है। ☐

☐ यदि समाज अथवा राष्ट्र को गत्यवरोध की दशा से मुक्त कर, गतिशीलता एव प्रगति की दशा मे परिणत करना है तो समाज एव राष्ट्र की सेवा के लिए ज्ञान का अधिकतम उपयोग करने की आकाक्षा एव सकल्प होना चाहिए। जीवन मे ज्ञान का पर्याप्त महत्व हो, इसके लिए ज्ञान के केन्द्रो का भी अपना महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। उनकी भूमिका का एक बहुत बडा योग है। विश्वविद्यालयो को अपने छात्रो मे सामाजिक एव राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने का कार्य भी करना चाहिए। ज्ञान और दायित्वभावना का साथ-साथ विकास होना आवश्यक है। क्योकि यह ही एक ऐसी निर्माणशाला है जहाँ शालीनता एव उत्तरदायित्व को समझने वाले मानवो का निर्माण हो सकता है। मानव-मन मे यही पर ज्ञानाकुर प्रस्फुटित किए जा सकते हैं। ☐

☐ गगा हिमालय से निकलती है, और सागर को जाती है। समुद्र कितना ही दूर क्यो न हो उसका लक्ष्य वही है, और वह अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अनवरत गति से उछलती-कूदती चली जा रही है। वह किसी से पूछने के लिए नही रुकती कि सागर कितनी दूर है ? हाँ, बाँध बना कर कोई इजिनियर भले ही उसे रोक ले, परन्तु ज्यो ही बाँध टूटेगा वह फिर सागर की ओर ही बह निकलेगी। उसकी दिशा मे परिवर्तन नही आ सकता। यह निश्चित है कि बांध कभी न कभी टूटेगा ही। बन्धन टूटने के लिए ही हुआ करते हैं। निर्बन्ध अवस्था ही आत्मा की अपनी स्थिति है।

मानव जाति मे जात-पांत, पथ-सम्प्रदाय, वर्णभेद, रगभेद, भाषा, वर्ग तथा राष्ट्र भेद आदि की जो दीवारें हैं, ये टूटें तो प्रेम की गगा जन-मन मे फिर से वह निकले। समय आ रहा है, अब इनकी उपयोगिता समाप्त होती जा रही है। विश्व बन्धुत्व की मदाकिनी फिर से प्रवाहित होगी। ☐

☐ मानव की मानव से, समाज की समाज से मैत्री भावना स्थापित करना जीवन का एक चरम और व्यापक ध्येय है। इस ससार को एक ससार, एक वन्धुत्व और एक परिवार बनाने के महान लक्ष्य की पूर्ति की दिशा मे अहिसा बडा ही महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। सेवा अपने मे अहिसा और मैत्री का ही एक रचनात्मक रूप है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, फिर भले ही वह व्यवसाय हो, व्यापार-धधा हो, अन्य नैतिक मूल्यो की स्थापना हो, अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द हो, शान्ति हो, इन सब उद्देश्यो की प्राप्ति का साधन सेवा का आदर्श है। सेवा एक दूसरे को एक दूसरे के अत्यन्त निकट लाने मे महत्वपूर्ण कडी का कार्य करती है। यह तो वह पुल है, जो दो समानान्तर चल रहे हृदयो को मिला देता है। इसमे सयोजन की अपार शक्ति रही हुई है। इसलिए सेवा को सर्वोपरि मानवीय गुण माना गया है। ☐

□ मनुष्य हर किसी से और हर क्षेत्र मे मैत्री स्थापित करना चाहता है। वह अपने चारो ओर मित्रो की भीड जमा करना चाहता है। आदर और सम्मान प्राप्ति की भावना उससे ऐसा करने को कहती है। इसके लिए मनुष्य को अपनी मनोभूमि तैयार करनी होगी। क्यों कि धैर्य, करुणा, नम्रता, ईमानदारी, उदारता, शालीनता, नि स्वार्थ भावना, द्वेष का दमन, पारस्परिक विश्वास एव सहयोग की भावना आदि गुणो के द्वारा मैत्री की स्थापना की जा सकती है। इन मे से किसी एक गुण की कमी भी मनुष्य को मैत्री-पथ से भटका सकती है। मन की भूमिका हमे इन्हीं सब आधारो पर तैयार करनी होगी। तभी हम उसमे मैत्री का बीज बो सकेंगे। बिना किसी पूर्व तैयारी के बोये गए बीज के उग भी आने की सभावना कम रहती है। यदि कभी वह उग भी आता है किसी पूर्व तैयारी के बगैर तो इस को मात्र सयोग ही माना जाएगा। संयोग और सयोजना मे बहुत बडा अन्तर है। कार्य साधना की निश्चित भूमि आकस्मिक सयोग नही, सुनिश्चित सयोजना है। □

□ वही व्यक्ति भविष्य की चिन्ताओ से अधिक आक्रान्त होता है, जो वर्तमान से निराश हो उठता है। निराश वही व्यक्ति होता है जो स्वय के पुरुषार्थ को भुला कर दूसरो से कुछ आशा-अपेक्षा रखता है। बैसाखियो के सहारे लम्बी मजिलें कभी तय नही हुआ करती। जब तक स्वय का पौरुष-पुरुषार्थ जागृत नही होगा, तब तक निराशा एव चिन्ताओ के चक्र से व्यक्ति छुटकारा पा ही नही सकता। वह जीवन-विकास के मार्ग को पार कर, अन्तिम लक्ष्य-बिन्दु का स्पर्श कर ही नही सकता। अन्तर मे पुरुषार्थ ने ज्यो ही अगडाई ली कि निराशा भगी। निराशा भगी कि चिन्ता-चक्र टूटा। चिन्ता-चक्र टूटा कि उत्साह एव आत्म विश्वास की उपलब्धि हो जाती है। जो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व भर के लिए प्रगति एव नि.श्रेयस् के द्वार उद्घाटित कर देती है। इसलिए जो भी महत्वपूर्ण कार्य करना हो, उसके लिए यह मत सोचो कि इसमे दूसरे क्या सहयोग कर सकते है? अपितु यही सोचो कि मैं स्वय क्या कर सकता हूँ और मुझे क्या करना चाहिए? □

☐ मानव का जीवन तीन धाराओ मे से होकर गुजरता है। अथवा यो कह लीजिए कि मनुष्य जीवन तीन अवस्थाओ मे विभक्त किया जाता रहा है। वे तीन अवस्थाएँ हैं वचपन, यौवन और वृद्धत्व। इन तीनो अवस्थाओ का समन्वित रूप ही जीवन है। मनुष्य के जीवन मे वाल्यकालीन ताजगी, स्फूर्ति एव स्वच्छ हृदयता, यौवन कालीन उत्साह, उमग, शक्ति एव क्षमता तथा वृद्धावस्था कालीन अनुभव, वैचारिक प्रौढता, गम्भीरता और दायित्ववहन की भावना इसप्रकार इन तीनो स्थितियो का सगम होना ही जीवन की त्रिवेणी है। जो गति, स्फूर्ति और गाम्भीर्य की प्रतीक है। इस प्रकार की गुणात्मक एकवद्धता जीवन के उन्नयन, उत्कर्ष तथा प्रगति की द्योतक है। एक ही जीवन मे इन सबका यथोचित रूप से घटित हो जाना उसकी दिव्यता और महानता है। ☐

□ जीवन मे पूर्णता चाहने वालो के लिए आवश्यक है कि वे जो भी कार्य करें, पूरे विवेक, योग्यता एव मनोयोग पूर्वक तल्लीनता के साथ एकरस होकर करें। उसे बेगार अथवा भार मानकर नही। फिर देखिए जीवन मे क्या रग आता है? इस प्रकार से किया गया कार्य जीवन मे अमृत-रस का वर्षण करेगा। यही सफलता की कुञ्जी है, और जीवन की पूर्णता भी। □

□ किसी भी पथ, सम्प्रदाय या दल से बँधते ही मनुष्य के मन की गति अवरुद्ध होने लगती है। उसके विचार उसकी ही सीमाओ मे अवरुद्ध होने के कारण कुण्ठाएँ उसे चारो ओर से घेर लेती हैं। उस के अन्तर मे शनैः शनै जडता का आविर्भाव होने लगता है। उसका मुक्त-चिन्तन-चित्र किसी एक चौखटे मे ही सिमिट कर रह जाता है। उसकी जीवन-सरिता का स्वच्छ प्रवाह दूषित होने लगता है। यहाँ तक कि उसके अन्दर से नव-जीवन के निर्माण की शक्ति ही समाप्त प्राय हो जाती है। क्योकि मानव-मन दलवन्दी के पिंजडे मे ऐसा फँस जाता है कि उसके मुक्त होने की सभी सम्भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं। सीमाओ से मुक्ति अमरत्व की परिचायक है, तो किसी एक सीमा मे वद्ध हो जाना मृत्यु की। मनुष्य का लक्ष्य मृत्यु नही अमरत्व है। □

□ क्रान्ति के नाम पर कभी-कभी बडी-बडी भ्रान्तियाँ भी पल जाया करती हैं। जैसा कि वर्तमान मे हमारे सम्मुख स्पष्ट रूप मे आ रहा है। स्थान-स्थान पर हो रहे आन्दोलन, तोड-फोड तथा अग्निकाण्ड ये सब भ्रान्तियो के ही तो प्रतिफल हैं। जो क्रान्ति का लवादा ओढे आज के मानव के मन-मस्तिष्क को भ्रमित कर रहे हैं। जन-मानस के असन्तोष को भडका कर, जन-जीवन को क्षुब्ध तथा तनाव पूर्ण कर देना क्रान्तिकारी का काम नही। सच्ची क्रान्ति तथा सच्चा क्रान्तिकारी तो वह है जो मानव-चिन्तन के लिए नए क्षितिज खोले। मानव-मन मे नई सभावनाएँ अकुरित करे। जीवन तथा जीने के नए आयाम स्थापित करे एव जन-मन-गण को सही दिशा-वोध दे। □

☐ जो प्रतिपल विकसित होता चला जाए, सूक्ष्म घरौंदे से निकलकर सम्पूर्ण आकाश पर छा जाए, वही महापुरुष हो सकता है। यानी जो क्षुद्र से विराट्, अणु से महान, विन्दु से सिन्धु की निस्सीमता मे पहुंच जाता है, वही महापुरुषो की श्रेणी मे आता है। महान का अर्थ ही है विराट्-विशाल। ☐

□ दृष्टि की एक सीमा है। थोड़ी दूर पहुंच कर वह रुक जाती है। आगे देखने के लिए उसे देखे गए छोर तक पहुंचना होता है। एक यात्री सडक पर चल रहा है। उसका लक्ष्य दस या वीस या तीस मील आगे जाना है। जहाँ वह खडा है यदि वहाँ से ही वह अपने लक्ष्य-विन्दु को देखना चाहे तो यह असम्भव है। वह अपने सामने का कुछ ही रास्ता देख पाता है। शेष अनदेखा ही रहता है। किन्तु यात्री ज्यो-ज्यो आगे वढता है, दिशा पकडता है तो आगे का पथ प्रकाशित होता चला जाता है। उसका उठने वाला प्रत्येक पग मजिल की दूरी कम कर देता है। फिर वह एक दिन अपने लक्ष्य पर अवश्य ही पहुंच जाता है। इसलिए दृढ सकल्प और मजवूत कदमो से चलते चले जाओ, प्रकाश मिलता चला जाएगा। मार्ग स्पष्ट होता जाएगा और मजिल निकट आती जाएगी। चरै. वेति! चरै वेति! □

☐ अज्ञात हमेशा बुलाता रहता है। उसके प्रति जिज्ञासा का होना मानव की सहज वृत्ति है। बडे से बडे खतरे उठाकर भी वह उस पर से पर्दा उठाने का प्रत्यन करता है। असफलताएँ और कायरता पूर्ण तर्क इन्सान को कल्पना करने से कभी नही रोक सके। उसकी जानने, जाँचने की और खोज करने की प्रवृत्ति को कुण्ठित नही कर सके। मनुष्य की प्रगति के इतिहास मे वार-वार ऐसे अवसर आए हैं। अज्ञात को जानने की जिज्ञासा जब अधिक वलवती हो उठती है मानव-मन मे तो अनेक उपलब्धियाँ नवीन रूप मे उसके सम्मुख प्रगट हो उठती हैं। जीवन के लिए प्रगति के नए आयाम स्थापित होने लगते हैं।

धार्मिक विचारक इस वात मे पुन जागरण की प्रक्रिया देखेंगे। वे कहेंगे कि मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिरूप और उसी की तरह वनाने की कोशिश कर रहा है। यह काल और दूरी के वन्धनो को तोड डालना चाहता हैं। क्या उसका यह प्रयत्न इस वात से प्रेरित नही कि सच्चा आध्यात्मिक मनुष्य अपने परम पिता असीम और अनन्त आत्मा की भाति किसी सीमा मे वधा नही रह सकता? ☐

□ जिसको भी देखिए वही उत्तेजना पूर्ण मन-मस्तिष्क लिए हुए है। छोटी-छोटी बातो को लेकर आए दिन संघर्ष होते है। क्या व्यक्ति, क्या समाज और क्या राष्ट्र सब असहिष्णु होते जा रहे है। परिणाम पारस्परिक टकराहट के रूप मे सामने आ रहा है। सब एक दूसरे से भयाक्रात है। यह भय की भावना अविश्वासो को जन्म दे रही है। मनुष्य और उसकी कार्य पद्धति अन्दर मे कुछ और तथा बाहर मे कुछ अन्य ही बनती जा रही है। इससे उत्तेजना फैलती है। फलत अनेकानेक सघर्ष, उपद्रव सामने आ जाते है। जिससे मानव-मन की पवित्रता, शालीनता और सहज जीवन जीने की वृत्ति समाप्त हो जाती है। सघर्षो और उपद्रवो के मूल मे असहिष्णुता ही होती है। इसीलिए मन की शान्ति, कर्म की पवित्रता एव सफलता के लिए मन मस्तिष्क का सुस्थिर तथा उत्तेजनाहीन होना आवश्यक है। यह ही व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व शान्ति का मूलमत्र है। □

☐ प्रश्न आया कि मनुष्य के लिए सबसे अधिक मूल्यवान क्या है ? किसी की दृष्टि धन पर गई तो किसी ने जन-बल को सबसे अधिक मूल्यवान माना। कोई सत्ता की ओर दौड गया, उसी को सबसे अधिक मूल्यवान समझकर। किसी ने अधिक से अधिक जन-बल एकत्रित करने को ही मूल्यवान माना। किन्तु गहराई तक कोई नही पहुंच पाया। सब ऊपर ही ऊपर तैरते रहे। वे डुबकी लगाना ही भूल बैठें। किनारे पर बैठे रहने वालो के भाग्य मे सीप शख ही हुआ करते हैं। ऊपरी सतह पर तैरने वाले के हाथ कुछ नही लगा करता यदि समुद्र की थाह पानी है तो उसके लिए गहरी डुबकी लगाने का अभ्यास करना होगा। जो गहराई मे पैठ गए उनके लिए जीवन-यापन के नए द्वार खुल गए। जीवन के नए आयाम स्थापित हो गए। जीवन का नए सिरे से मूल्याकन होने लगा। इसलिए भागते-दौडते जीवन मे मनुष्य के लिए समय का एक-एक क्षण भी सर्वाधिक मूल्यवान है। जो समय के मूल्य और महत्ता को समझ गया, उसका दामन खुशियो और सफलता के नानाविध सुगन्धित पुष्पो से भर गया। इसलिए समय के मूल्य को पहचानिये, और उसका सही सदुपयोग कीजिए। ☐

☐ प्रेम मानव-मन की एक सहज स्वय स्फूर्तवृत्ति है। जो किसी न किसी रूप मे समस्त मानव-जगत मे व्याप्त है। देखने मे आ रहा है कि आज प्रेम के नाम पर कलुषता पनपती जा रही है। प्रेम के नाम पर आज अनेक विभाजक रेखाएँ उभर रही हैं, जो मानव-हृदय की पावनता को चाट जाना चाहती हैं, उसको टुकडो-टुकडो मे विभाजित कर बिखेर देना चाहती हैं। हमे इन सबसे अपने आप को बचाकर रखना है। गगा के समान पवित्र, अन्तरिक्ष के समान अनन्त और हिमालय के समान उच्च प्रेम से युक्त मानव ही सच्चा मानव है। ☐

☐ जो जो बातें तुममे शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक दुर्बलताओ को उत्पन्न कर रही हो, उन्हे तुरन्त तहस-नहस कर समाप्त कर डालो। विष और जीवन भला एक साथ कैसे रह सकते हैं ? अन्धकार और प्रकाश की एक ही स्थान पर उपस्थिति की कल्पना कैसे की जा सकती है ? इन बातो की सच्चाई मे रच मात्र भी अविश्वास न रखो। सत्य को अपनाने से पौरुष का निर्माण होना अनिवार्य है। जिसके सहारे तुममे दुर्बलता पैदा हो, उसे सत्य कहना कैसे सभव है ? सत्य का अर्थ है शुचिता एव ज्ञान। दुर्बलताओ को नष्ट करना, यही सत्य का कार्य है। सत्य प्रकाशमय है। उसकी सहायता से बुद्धि का प्रकाशित होना, उत्साह के उत्स का निर्माण होना अवश्यम्भावी है। ☐

☐ अभाव का अधकार निराशा को जन्म देता है। निराशा भविष्य के भव्यचित्र को धूमिल वना देती है। परन्तु इसमे कोई सन्देह नही है कि वर्तमान के कुहासे मे भी एक उज्जल भविष्य उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन मानव भविष्य मे जो कुछ भी उपलब्ध करेगा, उसका श्रेय उसके वर्तमान के कर्म प्रधान अनुभव को ही जायगा। हमारा वर्तमान का कर्म ही अच्छे अथवा वुरे भविष्य का निर्माता है। हमारा आज का पुरुषार्थ आने वाले कल का भाग्य है। अपने जीवन की डोर हमारे स्वय के हाथो मे है। अपना दिशा निर्धारण हमे स्वय ही करना है, कोई अज्ञात शक्ति हमारी नियता नही। इसलिए हम अपने पुरुषार्थ को जगाएँ, निराशा से धूमिल होते भविष्य के चित्र को बचाएँ और उसे सत्कर्म के सुनहरे रगो मे सजाएँ। ☐

☐ शिक्षा केवल पाठशाला, स्कूल या कॉलिजो मे सीखने की कला नही है। वह जीवन के साथ वैसे ही सम्बद्ध है, जैसे शरीर के साथ प्राण। शिक्षा का उद्देश्य मात्र अक्षर-बोध ही नही, चरित्र निर्माण भी है। स्वास्थ्य, विचार और चरित्र मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इन सबकी पूर्ति शिक्षा से ही होती है। अतएव शारीरिक, मानसिक एव नैतिक विकास का नाम ही शिक्षा है। इन्ही तीनो के विकास से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व निर्माण ही शिक्षा का सार माना जाता है। ☐